वर्ष ३ अंक ३४
संवत् २०७७ श्रावण- भादो मास
अगस्त २०२१

आर्ष क्रान्ति

वैदिक समाज व्यवस्था के लिए समर्पित

अगस्त माह में देश–विदेश में अनेक ऐसी घटनाएं घटीं, अनेक महापुरुषों ने जन्म लिए, ऐसे कार्य और दिवस मनाने जाते हैं जिससे विश्व को प्रेरणा मिली। ऐसी कौन सी चमत्कारिक घटनाएं घटीं और इतिहास किनसे शोभित हुआ, आइए जानते हैं—

1 अगस्त बाल गंगाधर स्मृति दिवस, राष्ट्रीय पर्वतीय पर्वतारोहण दिवस।
3 अगस्त नारली पूर्णिमा।
4 अगस्त मैत्री दिवस।
6 अगस्त हिरोशिमा दिवस।
7 अगस्त राष्ट्रीय हथकरघा दिवस , एंटीन्यूक्लियर दिवस।
8 अगस्त भारत छोड़ो आंदोलन दिवस, विश्व साक्षरता दिवस।
9 अगस्त विश्व के स्वदेशी लोगों का अंतर्राष्ट्रीय दिवस, विश्व आदिवासी दिवस ।
10 अगस्त कजरी तीज ।
12 नागपञ्चमी।
13 अगस्त विश्व अंगदान दिवस।
15 अगस्त भारत का स्वतंत्रता दिवस, योगी अरविंद जन्मदिवस ।
19 अगस्त विश्व मानवता दिवस, विश्व फोटोग्राफी दिवस।
20 अगस्त सदभावना दिवस।
22 श्रावणी रक्षाबंधन।
25 अगस्त महिला सदभावना दिवस।
29 अगस्त राष्ट्रीय खेल दिवस, पं गंगा प्रसाद उपाध्याय जन्मदिवस।
30 अगस्त जन्माष्टमी

श्रावणी उपाकर्म व
जन्माष्टमी
की विशेष शुभकामनाएं

आर्य लेखक परिषद्

स्वतंत्रता दिवस व
श्री अरविंद जन्मदिवस
की विशेष शुभकामनाएं

ओ३म्

आर्य लेखक परिषद् का मुख पत्र

आर्ष क्रान्ति

अगस्त २०२१

वर्ष–३ अंक–३४,
विक्रम संवत् २०७८
दयानन्दाब्द– १९७
कलि संवत् – ५१२३
सृष्टि संवत् –१,९६,०८,५३,१२२

प्रधान सम्पादक
वेदप्रिय शास्त्री
(७६६५७६५११३)

❖

सम्पादक
अखिलेश आर्येन्दु
(८१७८७१०३३४)

❖

सह सम्पादक
प्रांशु आर्य (कोटा)
(८७३९९७९६३०,
९९९३९७०९४०)

❖

आकल्पन
प्रवीण कुमार (महाराष्ट्र)

❖

सम्पादकीय कार्यालय
महर्षि दयानन्द आश्रम
ग्राम सिताबाडी, केलवाड़ा
जिला–बारां (राजस्थान)–३२५२१६

अनुक्रम

विषय

१. क्या आप स्वतन्त्र हैं ? (सम्पादकीय)
२. दुख–सुख और आनन्द : जीवन के तीनों...
३. Highest Ashrama : Samnyasa
४. गुण–गोत्र और व्यक्तित्व की पहचान...
५. श्रावणी का वैदिक स्वरूप
६. चलो! कुछ नया करके दिखाते हैं... (कविता)
७. गरीबी मिटाने के लिए सार्थक पहलकी आवश्यकता
८. समय के साथ स्वयं को उपयोगी बनाने की चुनौती
९. कृतज्ञता की कीर्ति
१०. ग्रीन हाउस गैसों को खत्म करने में कारगर...
११. धिक्कार है (कविता)

ईमेल – aryalekhakparishad@gmail.com
वेबसाइट – https://aryalekhakparishad.com/
फेसबुक – आर्य लेखक परिषद्

Digital

सम्पादकीय

क्या आप स्वतन्त्र हैं ?

अक्सर लोग स्वतंत्रता और परतन्त्रता की बहस में उलझ कर दोनों के बीच में निहित वास्तविक तथ्य को खो देते हैं। थोड़ा विचार कीजिए कि क्या आप स्वतंत्र हैं ?

यदि नहीं तो परतन्त्र होंगे। परन्तु कोई भी प्राणी पूरी तरह से परतन्त्र नहीं मिलता, इसी प्रकार पूरी तरह से स्वतंत्र भी कोई नहीं मिलता। किसी ने एक विद्वान् से यही पूछ लिया कि हम स्वतन्त्र हैं या परतन्त्र ? विद्वान् ने कहा अपना एक पैर ऊपर उठाइए। उसने झट से उठा दिया। विद्वान् ने कहा इसको ऊपर ही रखिए और दूसरा पैर भी ऊपर उठा लीजिए। उसने कहा फिर तो गिर पड़ूंगा। विद्वान् ने कहा बस आप यहीं तक स्वतन्त्र हैं और यह स्वतंत्रता भी इस दूसरे पैर के सहारे पर टिकी हुई है। यदि दूसरा पैर ऊपर उठाना है तो इस पहले पैर का सहारा लेना होगा। इस लिए सचाई यह है कि हम सब परस्परतन्त्र हैं। किसी को उसका 'स्व' 'पर' के सहयोग के बिना प्राप्त नहीं हो सकता। कोई शरीर, परिवार, समाज और राष्ट्र अन्यों के सहारे के बिना स्वतन्त्र नहीं हो सकता। यह सहारा और सहयोग का भाव सबके अन्दर होना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। जब कभी भी स्वतन्त्रता बाधित होती है तो उसके पीछे यही एक कारण होता है।

हमारा जन्म परतन्त्रता में ही होता है। हमें स्वतन्त्र बनाने के लिए माँ से लेकर पिता, परिवार, समाज और राष्ट्र सबका सहयोग आवश्यक होता है। इसके लिए इन सब में योग्यता, प्रबल इच्छाशक्ति, कर्त्तव्यनिष्ठा, प्रेम और अपनत्व होना चाहिए। इसके लिए एक ऐसे तन्त्र का होना आवश्यक है जिसे सभी 'स्व' कह सकें, जो सबके साझे का हो, सबका अपना हो।

निश्चित रूप से ऐसा तन्त्र स्वतंत्रता और परतन्त्रता के समन्वय से ही बनेगा, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को कुछ स्वतन्त्र और कुछ परतन्त्र रहना पड़ेगा और इस स्थिति को मन से स्वीकार कर आदर देना होगा। सामाजिक बनने के लिए हमें अपनी आधी से अधिक इच्छाओं का दमन करना पड़ेगा और इसके लिए अपने मन को तैयार करना पड़ेगा। इसके बिना कोई सामाजिक नहीं बन सकता। सामाजिक प्राणी इस मनुष्य को इस सच्चाई को हृदयंगम करना ही होगा। इस लिए महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज के दसवें नियम में लिखा है कि *"सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।"*

स्वतन्त्रता को खतरा तभी होता है जब उसकी रक्षा के लिए जिम्मेदार लोग प्रमाद अथवा स्वार्थवश दायित्व का निर्वहन नहीं करते और शक्ति के मद में नियमविरुद्ध कार्य करने लगते हैं। परस्परतन्त्रता का आदर नहीं करते।

वेद में स्पष्ट कहा गया है कि –

"देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे"।

अर्थात् तू मुझे दे, मैं तुझे देता हूँ, तू मुझे सम्हाल, मैं तुझे सम्हालता हूँ।

यही परस्परतन्त्रता है। आज विडम्बना यह है कि मनुष्य, मनुष्य को नहीं सम्हाल रहा, समाज को अपना देयभाग नहीं दे रहा, लेना ही लेना चाहता है देना नहीं चाहता। इस कारण वह असामाजिक ही नहीं समाज कण्टक हो चुका है।

महर्षि दयानन्द के प्रादुर्भाव के पहले से ही इस देश में सामाजिकता नष्ट हो चुकी थी। समाज टूट कर वर्गों उपवर्गों में विभक्त हो चुका था और आजतक उसी तरह का है। महर्षि दयानन्द ने इस बात को समझ लिया था। इसी लिए उन्होंने आर्यसमाज की स्थापना की थी। वे एक स्वस्थ विश्व समाज बनाना चाहते थे। परन्तु उनके पश्चात् आर्यसमाज संसार के समक्ष एक स्वस्थ समाज का स्वरूप या आदर्श व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत नहीं कर सका। स्वयं कबीलों में बंट गया। महर्षि दयानन्द सबसे कहते थे कि *"यदि उन्नति करना चाहते हो तो आर्यसमाज के साथ मिलकर उसके उद्देश्यों के अनुसार आचरण करना स्वीकार कीजिए अन्यथा कुछ भी हाथ नहीं लगेगा।" और प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबको उन्नति में अपनी उन्नति*

समझनी चाहिए।''

आर्यों ने ऋषि के इस परस्परतन्त्रता के सिद्धांत की उपेक्षा ही नहीं की अपितु उसके विपरीत आचरण व्यवहार अपनाया। कभी भी समाज निर्माण का प्रयत्न ही नहीं किया। महर्षि दयानन्द ने एक स्वस्थ समाज बनाने का पूरा कार्यक्रम प्रदान किया है, परन्तु किसी ने उस पर कार्य नहीं किया। कहने को आज हम स्वतंत्र हैं परन्तु मानसिक रूप से, भाषायी रूप से, शिक्षा, चिकित्सा न्याय और भोजन छादन की दृष्टि से आज भी गुलाम ही हैं। परस्परतन्त्रता पर आधारित एक स्वस्थ समाज के निर्माण के बिना गुलामी से छुटकारा सम्भव नहीं है।

एक स्वस्थ समाज वह होता है जिसकी अपनी एक भाषा होती है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त का अपना एक कर्मकाण्ड होता है। सबके लिए एक जैसी शिक्षा, चिकित्सा की व्यवस्था होती है। सबके लिए जीविका सुलभ होती है जहाँ समाज की कमजोर इकाई को दृढ़ता और सुरक्षा देने की व्यवस्था हो, पक्षपात रहित न्याय, प्रेम, सहानुभूति और अपनत्व मिलता हो। सोचिए क्या आर्यों ने कभी ऐसा समाज बनाने का प्रयास किया, क्या ऐसा करने की दृढ़ इच्छाशक्ति आर्यों में है ? यदि है तो परस्परतन्त्रता पर आधारित अपना जनाधार बढ़ाने में लग जाइए।

परस्परं भावयन्तःश्रेयःपरमवाप्स्यथ।।

– ✍ वेदप्रिय शास्त्री

योगदर्शन के प्रथम पाद – समाधिपाद पर योगसूत्रों और उनके व्यासभाष्य पर आधारित ५० प्रश्नों की प्रश्नमाला हमारी www.vedyog.net website *पर* online test *के रूप में उपलब्ध है। हम हिन्दी एवम अंग्रेजी दोनों माध्यम से परीक्षा दे सकते है। इसमें हर प्रश्न के उत्तर हेतु ४ विकल्प दिए गए हैं। जिसमें आपको सही विकल्प को चुनना है। परीक्षा के माध्यम से हम अपने योगदर्शन से संबंधित ज्ञान की स्थिति का आकंलन कर पायेंगे।*

आर्ष क्रान्ति के सुधी पाठकों से

समाज सुधार, संस्कृति उन्नयन और धर्म जिज्ञासा क्षेत्र की अनेक पत्रिकाएं सोशल मीडिया पर आपने देखी और पढ़ी होगी । आर्ष क्रांति पत्रिका का तेवर और स्वरूप कैसा है इसे जानने की जिज्ञासा आपके मन में पैदा होती है, तो यह समझना चाहिए आप एक विचारवान और जिज्ञासु किस्म के बुद्धिमान व्यक्ति हैं । हमें आप जैसे क्रांतिकारी और प्रगति गामी विचारवान व्यक्ति का साथ चाहिए। फिर देर किस बात की । नीचे लिंक पर जाइए और फार्म भर कर हमें भेज दीजिए। अब आप जुड़ गए हैं ऐसी संस्था और पत्रिका से जो एक आदर्श समाज, उन्नतशील संस्कृति और मानव मूल्यों के धर्म की स्थापना के लिए कृतसंकल्प है । आप एक शुभ संकल्पवान व्यक्ति हैं और यह पत्रिका भी शुभ संकल्पों को मूर्त रूप देना चाहती है, एक आदर्श समाज निर्माण में हमारी संस्था और पत्रिका से जुड़कर आप अपना अमूल्य योगदान दे सकते हैं । आपका हमें इंतजार रहेगा।

इस लिंक पर क्लिक करके यह फार्म अवश्य भरें

http://bit.ly/aarshkranti

नोट – फॉर्म को भरने के लिए अपने मोबाइल / कंप्यूटर में इन्टरनेट अवश्य चालू रखे

दुःख–सुख और आनन्द : जीवन के तीनों पक्षों पर सहज चिन्तन

– ✍ अखिलेश आर्येन्दु

पिछले अंक में दुःख के कारणों, मान्यताओं और धारणाओं पर विवेचनात्मक चिन्तन देने का प्रयास किया गया था। इस अंक में मानव दुःख से मुक्ति कैसे पाए पर चर्चा की जाएगी। हम जानते हैं मानव का मूल स्वभाव सुखी होना है और सुख की कोई सीमा नहीं है, इसलिए दुख से छूटने के उपायों और निवारण पर लाखों वर्षों से प्रस्तुत किए जा रहे 'सूत्रों' की समझ सामान्य और असामान्य जन को कम ही है। इसका कारण है दुख को दैवीय मान लेना और दुख से छूटने के लिए सांसारिक प्रयासों के अतिरिक्त अन्य प्रयासों को ठीक से आगे न बढ़ाना। यह इसलिए होता है कि जब दुःख की ही समझ आम जन को नहीं है तो उसके निवारण के उपायों को कैसे लागू किया जा सकता है। मैं मानता हूँ दुःख जीवन का एक पक्ष है और दूसरा पक्ष सुख है। इसमें सामान्यतः तीसरा पक्ष नहीं होता अर्थात सुख–दुख के बीच वाली स्थिति कभी अपवाद स्वरूप ही हो सकती है, क्यों की यह जीवन का पक्ष नहीं है बल्कि अपवाद स्वरूप एक स्थिति है। वहीं पर वैदिक संस्कृति और दर्शन परम्परा में 'आनन्द' जीवन का तीसरा पक्ष है। आनन्द जीवन का तृतीय पक्ष इसलिए है क्योंकि जीवन के चार पुरुषार्थों में अन्तिम पुरुषार्थ 'मोक्ष' की स्थिति आनन्द की ही होती है, वहाँ न तो सुख है और न ही दुःख। इसलिए हमारे वैदिक ऋषि–मुनियों ने जीवन के तीनों पक्षों को जन सामान्य के सामने रखा। मुझे लगता है वर्तमान में मानव जीवन से सामान्यतः 'आनन्द' समाप्त हो गया है। क्योंकि सतत् आनन्द मोक्ष में ही मिलता है और मोक्ष के लिए अपवाद स्वरूप ही प्रयास किए जाते हैं। मेरा कहने का भाव यह है कि दुःख निवारण के उपायों को गहराई से मानव समाज को समझना आवश्यक है। और जीवन के चारों पुरुषार्थों को समझना और कर्तव्य मानकर पालन करना उससे ही अधिक आवश्यक है। इससे सुख–दुख की ठीक समझ बनती है और दुःख से छूटकर आनन्द की स्थिति मोक्ष प्राप्ति के लिए भी लक्ष्य निर्धारित करने में सहायता मिलती है। प्रस्तुत लेख इन्हीं बिन्दुओं को उद्घाटित करने का प्रयास करेगा। पाठकगण बताएंगे कि लेखक इसमें कितना सफल हुआ है।

– सम्पादक

दुःख–सुख और आनन्द जीवन–यात्रा के सारथी जैसे हैं। जीवन रूपी रथ के सारथी होने के कारण हम इनके प्रभावों से बच नहीं सकते, लेकिन यदि इनके प्रति अनुराग से मुक्त होते जाएं तो सम्भव है, जीवन का रंग–ढंग दोनों बदल जाएं। दरअसल, हम अपने अनुसार चीजों को पाना चाहते हैं। जब अपनी इच्छा से नहीं प्राप्त होती तो हम दुःखी हो जाते हैं और दुःख से मुक्ति पाने के लिए सोचने और गम्भीर दुःख मिला तो छटपटाने लगते हैं। वर्तमान मानव जीवन में दुःखों की भरमार इसलिए है कि हम वर्तमान जीवन को ही साध्य मान बैठे हैं, जबकि जीवन साधन है–कर्म के परिणाम की प्राप्ति का।

सामान्यतः शारीरिक दुःख (रोग) बढ़ने का कारण आहार–विहार और आचार–विचार में असन्तुलन और अव्यावहारिकता है। देखने में आया है कि लोग (अनपढ़ व पढ़े–लिखे दोनों) मीडिया, विज्ञापन और नीम–हकीमों पर अंधविश्वास के कारण अधिक बीमार हो रहे हैं। धन–दौलत को बेतहांसा महत्व देने के कारण हम शरीर, प्राण, मन, आत्मा आदि के प्रति लापरवाह हो गए हैं। दिन चर्या और ऋतु चर्या दोनों के प्रति चिन्तन करना भूल गए हैं। इन सब का परिणाम दुःखों का निरन्तर बढ़ते जाने के रूप में हमारे सामने है। कहने का भाव यह है कि आहार–विहार व आचार–विचार के प्रति लापरवाही के कारण दुःख प्राप्त हो रहा है। ध्यान देने वाली बात यह है कि आहार–विहार और आचार–विचार सभी स्तरों पर हिंसा–अहिंसा का विचार छोड़ चुके हैं और छोड़ते जा रहे हैं। शाकाहार भारतीय जीवन शैली का अभिन्न अंग रहा है, लेकिन पश्चिमी अपसंस्कृति के अंधानुकरण के कारण मांसाहारी आहार जीवन का अंग बनता जा रहा है, इससे भी शारीरिक व मानसिक दुःख बढ़ते जा रहे हैं। अपसंस्कृति को छोड़ वैदिक संस्कृति की धारा में चलने की आवश्यकता है। इससे सुख व

आनन्द दोनों की प्राप्ति होगी।

आधुनिक सभ्यता संस्कृति में प्रकृति के प्रति लापरवाही, असंवेदनशीलता, हिंसा और क्रूरता पग–पग देखने को मिलते हैं जिसका परिणाम अन्ततः दुःख ही है। इसलिए प्रकृति के प्रति संवेदना, अहिंसा, करुणा और न्याय की पवित्र और निःस्वार्थ भाव बढ़ाने की आवश्यकता है।

आवश्कताओं को निरन्तर बढ़ाते जाने और फैशन के मकड़जाल में फँसकर जीवन को अत्यन्त जटिल और भौतिकवादी बनाने की अपेक्षा आवश्यकताओं और फैशन को कम करने का अभ्यास करते जाएं तो धीरे–धीरे सुखी होते जाएंगे। जीवन विज्ञापनों और सोशल मीडिया के माध्यम से न चलाकर विद्या, ज्ञान, अनुभव और चिन्तन से चलाकर देखिए। सुख और शान्ति दोनों का पर्याय बन जाएगा जीवन।

भोग से रोग और योग से निरोग (सुख) जीवन मिलता है। जितना भोग की ओर बढ़ते जाएंगे उतने ही दुःख के चपेट में आते जाएंगे। योग से शरीर, मन, प्राण, आत्मा आदि को स्वस्थ बनाने का संकल्प करें। दुःख से मुक्त होने का यह सबसे सरल–सहज तरीका है।

आधुनिक ज्ञान–विज्ञान के माध्यम से वस्तुओं, विषयों, उत्सवों और कार्यक्रमों को चकाचौंध बनाया गया है। यह दुःख को बढ़ाने वाली धाराएं हैं। इन धाराओं में फँसने से बचें और सहज–सरल जीवन की ओर आगे बढ़ने का संकल्प करें।

प्राकृतिक जीवन की सहजता और अप्राकृतिक जीवन की असहजता द्वारा प्राप्त परिणामों को समझने की आवश्यकता है। इससे सुख, दुःख और आनन्द की भी समझ हो जाती है। जैसा जीवन जी रहे होते हैं उससे उत्तम और फिर सर्वोत्तम जीवन जीने की दिशा में आगे बढ़ने का संकल्प करें। दुःखों से छूटने का यह सर्वोत्तम विधि हो सकती है।

आधुनिक जीवन व्यापन करने के साधनों और आधुनिक सुख–सुविधाओं वाले भवनों में रहते हुए शारीरिक, मानसिक और प्राणिक रूप से सुखी नहीं रहा जा सकता। वातानुकूलित भवन और कारों के मध्य रहते हुए स्वास्थ्य को सन्तुलित बनाए रखना बहुत कठिन है। इनमें तात्कालिक आराम तो मिलता है लेकिन दीर्धकाल में इससे दुःख प्राप्त होते हैं। इसलिए घास–फूस या झोपड़ी में रहने की प्राथमिकता देनी चाहिए।

घर की बनी हुई वस्तुओं का सेवन करना आरोग्यता के दृष्टिकोण से अच्छा होता है। इसलिए स्वदेशी, शाकाहार, स्वावलम्बन, स्व–संस्कृति, स्वधर्म और स्वभाषा का प्रयोग सुखी बनाने के आधार है। विचार करिए आप का जीवन में क्या इनका प्रयोग है। यदि नहीं है तो सुख और शान्ति जीवन के अंग नहीं बन सकते।

अपने कर्तव्यों, कार्यों, उद्देश्यों और योजनाओं पर ध्यान एकाग्र करें और उन पर ही चिन्तन कर आगे बढ़ें। दूसरों के कर्तव्यों, कार्यों, उद्देश्यों और योजनाओं पर बेमतलब समय न खराब करें, इनसे दुःख मिलता है। कहने का भाव यह है सुखी रहना है तो सुख की ओर आगे बढ़े, और सुख 'स्व' में निहित है, 'पर' में नहीं। वह चाहे धर्म का हो या भाषा का। कर्तव्य हो या कार्य। उद्देश्य हों या योजनाएं हों।

आहार और विचार दोनों से शरीर, मन और प्राण रोगी बनते हैं। यदि सम्भव हो तो प्राकृतिक खेती अपनाएं या प्राकृतिक खेती के माध्यम से उत्पन्न फलों, सब्जियों, खादान्न, दूध और मेवों का ही सेवन करें। इससे निरोगता बढ़ती है।

पशु–पक्षी हों या मानव हों, किसी के प्रति द्वेष–ईर्ष्या, क्रोध और हिंसा ठीक नहीं। हिंसा से हिंसा की ही प्राप्ति हुई है। आजतक एक भी हिंसा के कार्य से सुख नहीं प्राप्त हुआ है। अपवाद की बात और है। सभी प्राणियों को ईश्वर की सन्तान मानकर उनके साथ यथायोग्य व्यवहार करना चाहिए। दुःख से छूटना है तो इस सत्य को हरहाल में अपनाना ही पड़ेगा।

सच्चा प्रेम, करुणा, दया, न्याय, अहिंसा और सहिष्णुता धर्म का पालन कर जीवन को मानवीय व सार्थक किया जा सकता है। शोषण, अन्याय, हिंसा, द्वेष–ईर्ष्या, क्रोध जैसे अमानवीय अवगुणों से बचें। दुःखों से मुक्ति मिल जाएगी।

दूसरों के वैभव, प्रगति, विद्या, ज्ञान और अनुभव का लाभ प्रेम पूर्वक लिया जा सकता है। वहीं पर द्वेष, ईर्ष्या और कुढ़न से दुःख प्राप्त होता है। सोचिए, दूसरों के धन–दौलत या उन्नति से द्वेष कर यदि दुःख मिल रहा है तो ऐसे दृष्टिकोण और विचार को छोड़ना ही अच्छा है। आज ही द्वेषाग्नि से मुक्ति पा लीजिए और सुखी हो जाइए।

प्राकृतिक, राजकीय और ईश्वरीय व्यवस्था से यदि दुःख मिल रह है तो उसे दुःख न उसे सहजता से

स्वीकार करें। इससे कुंठा, द्वेष, उलाहना, निराशा आदि से बचेंगे और दुःख में भी सुख का अनुभव करेंगे। हाँ, ऐसे समय यह विचार अवश्य करें कि उपरोक्त व्यवस्थाओं से प्राप्त दुःख का कारण कहीं मेरे किसी प्रकार के विचार, आचार, कर्म या व्यवहार तो नहीं हैं?

हमारे कर्म ही हमारे दुःख व सुख के कारण हैं या इनके कारण और भी हैं? इस पर चिन्तन करते रहें। लेकिन अपनी मान्यताओं और धारणाओं पर भी विचार करना चाहिए, क्या कहीं हमारी मान्यताओं और धाराणाओं के कारण दुःख प्राप्त नहीं हो रहा है और इसका कारण हम कहीं बाहर खोज या मान रहे थे?

शरीर की अपनी व्यवस्थाएं हैं। यह जब अस्तित्व में आता है तभी निश्चित हो जाता है कि इसका अस्तित्व एक न एक दिन समाप्त भी होगा। वह अल्पायु में भी हो सकता है और दीर्घ जीवन के बाद भी। शरीर के प्रति आसक्ति दुःख का बहुत बड़ा कारण है। स्वार्थ के कारण आप की शरीर के प्रति परिवार, सम्बन्धी और मित्रगण इसका सम्मान करते हैं। इसलिए सम्मान या अपमान को एक तरह से समझना दुःख से मुक्ति के लिए आवश्यक है।

स्वयं के प्रति, दूसरों के प्रति और राजसत्ता के प्रति आप का दृष्टिकोण किस प्रकार का है इस पर विचार अवश्य करना चाहिए। सन्तुलित दृष्टिकोण से ही सुखी रहा जा सकता है। सोचिए, निष्पक्ष होकर आप का दृष्टिकोण कैसा है? यह कहावत एकदम ठीक हैं कि जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि।

स्वयं को तोड़िए और न तो दूसरों को ही। दोनों से दुःख और अनादर मिलता है।

अपने अच्छे कार्यों को महत्व दीजिए लेकिन दूसरों के अच्छे कार्यों को और भी महत्वपूर्ण मानिए। क्योंकि अच्छे कार्यों के सम्मान करने से कर्त्ता में अच्छे कार्य करने की आदत पड़ती है। इससे आप को जो सुख मिलेगा, वह अवर्णनीय होगा।

दिखावा, अंधविश्वास, पाखण्ड, कुरीतियों, कुप्रथाओं और कुप्रवृतियों से बचते रहें। इनसे दुःख के अलावा स्वप्न में भी सुख नहीं मिलता। इसी प्रकार अंधश्रद्धा, अंधभक्ति, अंध परम्पराओं और अंध–विचारों के जाल में फँसने से बचते रहें। दुःख से बचें रहेगे।

समाज से जो अपेक्षा करते हैं उन अपेक्षाओं को स्वयं पर भी लागू कीजिए। यदि आप सहजता से उन्हें पूरा नहीं करते हैं तो दूसरों से क्यों करते हैं? दूसरों से की गईं अपेक्षाओं के मन मुताबिक पूरा न होने से मिलने वाले दुःख से मुक्ति के लिए यह आवश्यक है।

अपनी क्षमता, योग्यता और प्रतिभा से ही उद्देश्य और कार्यों को पूरा कीजिए। पहले 'स्व कर्तव्य' पर विचार करें फिर दूसरों के कर्तव्य के बारे में सोचें–बिना किसी अपेक्षा के।

बहुत अधिक धन–दौलत या निर्धनता दोनों दुःख के कारण हैं। इसलिए बुद्धिपूर्वक धन कमाने का उपक्रम करें, लेकिन धर्म का पालन करते हुए। सुखी रहना का सबसे उत्तम तरीका है।

षड् विकारों से मुक्ति के साथ जीवन व्यतीत करने का अभ्यास सुखी जीवन का पहला अध्याय है। इस अध्याय को जितना स्मरण रखेंगे उतना ही सुखी रहेंगे। परिवार, समाज, राष्ट्र, संस्कृति, स्वधर्म, स्वभाषा और स्वदेशी के लिए स्व–कर्तव्य करते हुए यदि दुःख मिले तो उसे सुख समझें। इससे जीवन, परिवार, समाज, राष्ट्र और स्वधर्म की उन्नति होती है। यह उन्नति आप के सुखी होने का भी कारण होगा।

दुःख से मुक्ति और सुख प्राप्ति के जिन उपायों के सम्बन्ध में मैंने चर्चा की, उन्हें चिन्तन के लिए और आनन्द के लिए प्रयोग कीजिए। हो सकता है आप के विचार में अन्य अनेक कारण हों। यदि कुछ और कारण दुःख प्राप्ति के समझ में आते हैं तो उन्हें भी समझ लीजिए। एक बात ध्यान देने वाली है कि दुःख से मुक्ति यदि वास्तव में चाहते हैं तो अपनी मान्यताओं, धारणाओं और विचारों को हठ या कुतर्क के तराजू पर तौलने की भूल न करें। मानव जीवन का परम लक्ष्य दुःखों से छूटना और सुखों में रहना है। इस अंक में इतना ही। आगे इस विषय के विस्तार पर लिखने का प्रयास किए जाएंगे।

यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति।।

ऋ० १/१६४/३९

जो उस ब्रह्म को नहीं जानता वह वेद से भी क्या फल प्राप्त करेगा।

HIGHEST ASHRAMA: SAMNYASA

– ✍ Dr. Roop Chandra 'Deepak'
Lucknow (U.P.)
Mob. 9839181690

Every Indian knows that the Ashramas are four— Brahmcharya, Grihastha, Vanaprastha and Samnyasa. All the four are distinct in their duties and responsibilities. No one is an alternative for another. One cannot be said to be more important as compared to another. The Grihastha Ashrama is undoubtedly the parent of all ashramas. Manu also says:

यथा नदीनदाः सर्वे
सागरे यान्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वे
गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्।।

(Manusmriti: 6.90)

[As all big and small rivers finally settle in the sea, so do all the four ashramas in the Grihastha Ashrama.]

This is all correct. But we are here discussing the supremacy of Samnyasa Ashrama. The Upanishad preaches:

नाविरतो दुश्चरितान्
नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो चापि
प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्।।

(Katha: 2.21)

[No man can realize God by mere intellect, if he is not free from evil deeds, if he is not peaceful, if he has not acquired habits of concentration by means of yoga, or if he does not possess equilibrium of mind.]

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्
यच्छेद् ज्ञान आत्मनि।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्
तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि।।

(Katha: 3.13)

[A wise samnyasin should check his tongue and mind from evil tendencies, and should prompt them towards knowledge and inner-self. He should centre the self in God and knowledge in the quietude of the self.)

The two above pieces from Kathopanishad are meant for samnyasins only, and not for other ashramas. Although there is no bar of ashramas here, the state of mind and soul narrated in the passages best suits to the Samnyasa Ashrama. The Upanishads further preach us:

परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो
निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन।
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्

समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।।

(Mundak: 2.12)

[A Brahmin, i.e., Samnyasin should understand that all worldly enjoyments are a fruit ripened out of past actions, and knowing so, he should be renunciative. God is uncreated, and cannot be attained by mere actions. The person seeking samnyasa should approach, for guidance, a preceptor, well-versed in the Vedas and knowledge of God with some presents in his hands, as a mark of respect. There, he should remove his doubts.]

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः
संन्यासयोगद्यतयः शुद्धसत्त्वाः।
ते ब्रह्मलोके परान्तकाले
परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे।।

(Mundak: 3.2.6)

[Those samnyasins whose innerself has become pure by means of firm renunciation, acquired of Vedanta or the knowledge of God, given in Veda-mantras with their meaning and implications, obtain in God the bliss of salvation, and come again to the world at the expiry of the period of salvation.]

Both of these passages from Mundakopanishad are preaching the height of soul's chief aim to the persons of renunciation. After all, the entire life is but a journey of soul, and salvation is its final station, or one of infinite finals. However, the final or finals are to be achieved through renunciation. Though renunciation may exist in Brahmcharya and other ashramas, its chief home is the Samnyasa Ashrama.

According to Shatapatha Brahmana:

लोकैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च पुत्रैषणायाश्चोत्थायाथ भैक्षचर्यं चरन्ति।

[Samnyasins are ever busy with the efforts tending towards the realization of salvation, living on alms, and leaving the three great desires: (1)Lokaishana, i.e., worldly popularity as a means of reputation or profit; (2)Vittaishana, i.e., enjoyment and respectability accruing from wealth; (3)Puttraishana, i.e., yearning for sons etc.]

The Manusmriti, in sixth chapter, says:

यो दत्त्वा सर्वभूतेभ्यः
प्रव्रजत्यभयं गृहात्।
तस्य तेजोमया लोका
भवन्ति ब्रह्मवादिनः।।39।।

[He, who becomes a samnyasin after taking the vow of absolute non-violence towards all creatures, and preaches God, i.e., righteousness and knowledge given in the God-revealed Vedas, he alone can attain the abode of light and bliss, i.e., salvation.]

अनेन विधिना सर्वांस्त्यक्त्वा
संगाञ्छनैः शनैः।
सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते।। 81।।

[The samnyasin does free himselfdegree by degree from all attachment and all sentiments, and establishes himself firm in God. The main duty of samnyasins is that they should bring home to the house-holders and others the nature of truth, make them leave evil ways, remove their doubts and misgivings, and stimulate them towards good deeds.]

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं
शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो
दशकं धर्मलक्षणम्।। 92।।

[The ten characteristics of dharma or righteousness are as follows:
(1)dhriti or perseverance.
(2)kshama, or the condition of being unpurturbed on the occasions of condemnation or eulogy, respect or disrespect, profit or loss, and other troubles.
(3)dama, or discipline of mind.
(4) asteya, or non-stealth.
(5) shaucha, or purity of body and mind.
(6) indriya-nigraha, or discipline of senses.
(7)dhee, or sharp and pure intellect.
(8) vidya, or knowledge of God, soul and the matter.
(9) satya, or real truth.
(10) akrodha, or control over fury.]

Although for all ashramas in a good degree, these ten characteristics of dharma are to be completely followed by the samnyasins. In other words, observance of dharma is for all people, following Vedic Culture; the other ashramas are allowed concessions to some degree; but there is no concession at all for samnyasins.

All the Four Ashramas are great in real sense. The samnyasins are, however, expected to certainly touch the highest mark of human life. In this respect the Samnyasa Ashrama is the highest of all ashramas.

नीति श्लोकम्

अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत्।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्।।

(हितोपदेश, श्लोक ३)

सूझबूझ वाला मनुष्य विद्या एवं धन अर्जित करने का विचार इस प्रकार करे जैसे कि वह बुढ़ापे और मृत्यु से मुक्त हो। किन्तु साथ में धर्माचरण भी यूं करे जैसे कि काल उसके बाल पकड़कर बैठा हो और कभी भी उसे इहलोक से उठा सकता हो। तात्पर्य यह है कि मृत्यु अवश्यम्भावी है, और कभी भी आ सकती है, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए धर्मकर्म में संलग्न रहे। फिर भी काल के भय से पुरुषार्थ करना न छोड़े, और जब तक जीवन है विद्या तथा धन के लिए प्रयत्नशील रहे।

सर्वद्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तमम्।
अहार्यत्वादनर्घत्वादक्षयत्वाच्च सर्वदा।।

(हितोपदेश, श्लोक ४)

विद्वान् लोग कभी न चुराये जाने, अनमोल होने तथा कभी क्षय न होने के कारणों से सभी द्रव्यों, यानी सुख-संपदा-संतुष्टि के आधारों में से विद्या को ही सर्वोत्तम होने की बात करते हैं। वस्तुतः विद्या है तो बहुत कुछ सम्भव है यह बात बुद्धिमान लोग सदा से ही कहते आये हैं। विद्याहीन मनुष्य कई मानों में निरर्थक जीवन जीता है यह बात मानी ही जाती है।

गुण–गोत्र और व्यक्तित्व की पहचान कराता है नामकरण संस्कार

– ✍ डॉ. विक्रम कुमार विवेकी

पिछले अंक में आप सब ने जातकर्म संस्कार के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की। आधुनिकता और फैशन के युग में धीरे–धीरे संस्कार–उत्सव, संस्कार–पर्व और संस्कार परम्परा का प्रचलन समाप्त होता जा रहा है। प्रत्येक व्यक्ति का उद्देश्य धन–सम्पत्ति का मात्र अर्जन रह गया है, वह चाहे स्कूली शिक्षा के बाद हो या बिना पढ़े–लिखे। हमारे समाज का यह दुर्भाग्य है कि लोग अपनी पुरानी स्वस्थ परम्पराओं और संस्कारों को भी भूलते जा रहे हैं। सब कुछ औपचारिक और दिखावे तक सीमित रह गया है। ऐसे में संस्कार क्या हैं?, उन्हें क्यों करना चाहिए? और उनकी महत्ता क्या है? जैसी आवश्यक बातों को जानने–समझने के उद्देश्य से संस्कारों की यह श्रृंखला प्रारम्भ की गई।

प्रस्तुत अंक में 'नामकरण' संस्कार पर विद्वान् लेखक ने प्रकाश डाला है। एक कहावत है–'नाम में क्या रखा है?' कुछ भी नाम रख दीजिए। यह तो बुलाने और स्कूल में लिखवाने में ही तो प्रयोग होता है। ऐसे लोग जो नाम में क्या रखा है के मुहावरे को बार–बार प्रयोग करते हैं उन्हें पवित्र मन से समझ लेना चाहिए कि नाम में सब कुछ रखा है। वरना लोग रावण, कंस, दुर्योधन, गोबर, मटमैला, गुबरैला जैसे शब्दों का भी नाम में प्रयोग करते। नाम केवल व्यक्ति की पहचान का निर्धारण नहीं करते अपितु उसके गुण, गोत्र, धर्म, वर्ण तक को बताते हैं। जितना सारगर्भित, सार्थक और सरल नाम रखा जाता है उतना ही अच्छा माना जाता है।

समाज में वैदिक वर्ण व्यवस्था अब है नहीं है इसलिए नामकरण संस्कार प्रचलन में कम हो गए हैं। फिर भी जो लोग जानते हैं सन्तान के जन्म के बाद उसके नक्षत्र, राशि और लग्न आदि को विचार कर या किसी योग्य विचारक से विचावाकर एक सार्थक, मौलिक और प्रभावशाली नाम रखते हैं। महर्षि दयानन्द ने संस्कार विधि में और आर्य जगत् के अन्य विद्वानों ने संस्कारों पर उपयोगी पुस्तकें लिखी हैं। जिज्ञासु जन को चाहिए कि संस्कार सम्बन्धी पुस्तकों का स्वध्याय अवश्य करें जिससे उन्हें संस्कारों की महत्ता के सम्बन्ध में ठीक–ठीक जानकारी हो सके।

– सम्पादक

प्राचीन गृह्यसूत्रों में नामकरण को भी एक महत्वपूर्ण संस्कार माना गया है। क्योंकि संस्कारों का उद्देश्य सन्तान को सभ्य व सदाचारी बनाना है, अतः नाम काम का बीज है जो उसे अंजाम देता है तथा उन्हीं कामों के आधार पर सन्तान को वितान होता है। यानी सार्थक नाम से प्रेरित काम ही उसे संस्कृत करते हैं। काव्यादर्शनकार दण्डी ने लिखा है–

इदमन्धन्तमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते।।

तनिक विचारें कि यदि कहीं कोई नाम ही न होता तो संसार का व्यवहार क्षणमात्र भी नहीं चल पाता, अतः नाम का अनिवार्य महत्व है। यह सम्पूर्ण सृष्टि नाम–रूपात्मक है। जगत् के प्रत्येक पदार्थ की कोई संज्ञा होती है, इसलिए प्रत्येक नूतन जड़ व चेतन पदार्थ को नाम देना पड़ता है।

जातकर्म संस्कार के पश्चात् ग्यारहवें, सौवें या द्वितीय वर्ष के आरम्भ में नवागत शिशु के नामकरण का विधान पाया जाता है। इस संस्कार का मूल भी वैदिक ऋचा में संनिहित है –

कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि।
यस्य ते नामामन्महि यं त्वा सोमेनातीतृपाम।।

तू कौन है? बहुतों में कौन सा है? किसका है? तेरा क्या नाम है? जिससे तुम्हें पहचानें, तुम्हें बुलायें। मन्त्र में संकेत है कि जीवन का चरम लक्ष्य इन चार चिरन्तन प्रश्नो के उत्तरों को पाना है। जीवन का अस्तित्व केवल मात्र जड़ शरीर के रूप में ही नहीं है, अपितु शरीर, आत्मा, मन व बुद्धि के संघात के रूप में है। मनुष्य को जानना होगा कि वह हौन है?

जड़–चेतनात्मक बहुविध सृष्टि में वह कौन सा है? जन्म लेने के पश्चात् किस माता–पिता के रज–वीर्य का शरीर है? किस नाम से उसके साथ व्यवहार किया जाना है? महर्षि चरक के अनुसार इन प्रश्नों के मद्देनज़र खूब सोच–विचार कर एक अच्छा सा नाम रखा जाता है जिसका प्रभाव उसके जीवन पर सर्वदा पड़ता है।

नाम कैसा हो? कितने अक्षरों का हो? कैसे अक्षरों वाला हो? कैसा न हो? आदि बातों पर भी शास्त्रों में विस्तृत चर्चा है। बालक का नाम समाक्षरों में तथा बालिका का नाम विषमाक्षरों में रखने का विधान है जिससे नाम लेने ही लिंग का ज्ञान हो सके। नाम सार्थक होना चाहिए, निरर्थक नहीं। अभिभावकों को अपनी सन्तानों से जो आशाएँ, अभिकांक्षाएँ हों वैसा ही भाववाला नाम उनका रखा जाना चाहिए। नामानुसार उस सन्तान के निर्माण में माता–पिता का योगदान होना चाहिए। मनुस्मृति के अनुसार ब्राह्मण बालक का नाम शुभ–श्रेष्ठ भावबोधक शब्दों से, क्षत्रिय वंशज का नाम बल–पराक्रम बोधक शब्दों से, वैश्य वंशज का नाम धन–ऐश्वर्य, सम्पन्नता–बोधक शब्दों से तथा शूद्र–वंशज का नाम रक्षणीय पालनीय भावबोधक शब्दों से रखना चाहिए। गुण–कर्म व स्वभाव को देखते हुए शर्मा, वर्मा, गुप्त, व दास शब्दों का क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र के साथ जोड़ने की भी बात कही गई है। इससे वर्णों की व उनके गुण–कर्म की पहचान होती रहती है।

यह सुखद है कि आज भी नाम वैदिक व संस्कृत भाषा के ही रखे जाते हैं। पेरेण्ट्स स्कूल चाहे इंग्लिश मीडियम का ढूढें पर नाम के लिए संस्कृत की शरण लेते हैं। समाज में कुछ नाम ऐसे भी पाये जाते हैं जिनका कोई अर्थ नहीं होता। जैसे–अनिक, बानुका, मोनिका। कुछ ऐसे भी नाम होते हैं जो अशुद्ध होते हैं। जैसे–कपेश, मनीश, तपेश आदि। नवीनता के चक्कर में ऐसे नाम रखने का प्रयास किया जाता है, इस विषय में पण्डित जनों से सलाह ले लेनी चाहिए।

सरांश में नामकरण एक पवित्र व अनिवार्य संस्कार है जिसे नकारा नहीं जा सकता। विचार, शब्द व कर्म को एक दूसरे से पृथक् कर देना देना सम्भव नहीं है। शब्द विचारमय व विचार शब्दमय होता है। विचार व शब्द का प्रभाव कर्म पर होता है। अतः नाम का मन व कार्मों पर नियन्त्रण स्पष्ट व सर्वविदित है। गृह्यसूत्रकारों ने अभिप्रायिक नाम रखने का विधान इसलिए किया है ताकि सार्थक नाम का कुमार के मन, मस्तिष्क व शरीर पर अच्छा प्रभाव पड़े, उस पर अच्छे संस्कार पड़ें। नाम लगाम बनकर व्यक्ति का दिशा–बोधक बना रहे, यह ही संस्कार का मुख्य लक्ष्य है।

महर्षि दयानंद द्वारा यजुर्वेद हिंदी भाष्य का प्रथम अंग्रेजी अनुवाद

प्रथम बार महर्षि दयानंद के वेद भाष्य का अंग्रेजी अनुवाद आचार्य सतीश आर्य के द्वारा किया जा रहा है। यजुर्वेद का अंग्रेजी अनुवाद लगभग पूरा हो गया है, अभी संशोधन का कार्य प्रगति पर है। आचार्य सतीश जी ऐसे वेदज्ञ और अनुवादक हैं जिन्होंने अपने बल पर वैदिक वांग्मय के उत्थान में अनेक कार्य किए हैं। ज्ञातव्य है विश्व में वेद का अंग्रेजी अनुवाद मैक्स मूलर आदि का पढ़ाया जाता है। आचार्य सतीश आर्य ने महर्षि दयानंद द्वारा किए गए वेद भाष्य का अंग्रेजी अनुवाद किया है। ज्ञातव्य है अभी तक ऐसा कार्य किसी ने नहीं किया था। अंग्रेजी अनुवाद के इस कार्य से विश्व में महर्षि दयानंद के वेद भाष्य को समझने का विद्त जनों को अवसर मिलेगा। जो भी विद्वान् आर्य जन महर्षि दयानंद के वेद भाष्य के अंग्रेजी अनुवाद पढ़ना –पढ़ाना चाहते हैं वे आचार्य सतीश आर्य के अंग्रेजी अनुवाद का अवलोकल एक बार अवश्य करें। आचार्य सतीश जी वेबसाइट के माध्यम से अंग्रेजी संस्कृत और हिंदी भाषा में वैदिक वांग्मय को आगे बढ़ाने का महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। आइए, हम सभी इनके कार्य का अवलोकन करें और इन्हें प्रोत्साहित करें।

श्रावणी का वैदिक स्वरूप

– ✍ प्रियांशु सेठ

श्रावण माह अज्ञानियों के लिए ज्ञान का संदेशवाहक बनकर आता है और जनसामान्य को कल्याणपथ पर चलने की ओर प्रेरित करता है। गर्मी के बाद जब वर्षा होती है, तो मानव चित्त वातावरण के अनुकूल होने से शान्त रहता है तथा मन प्रसन्न रहता है। श्रावणी का उत्सव इसी वर्षा के साथ आता है और चराचर जगत् को आनन्दित और उल्लासित करता है। बहिनें, भाइयों को राखी बांध उनसे आत्मरक्षण और अभय की आशा रखती हैं। स्त्री, पुरुष, पुत्र, पुत्री, पुत्र–वधु आदि जन यज्ञोपवीत (जनेऊ) पहनकर ऋषि, पितृ तथा देव ऋणों से उऋण होने का संकल्प लेते हैं। वेदपथिक अपने पुराने यज्ञोपवीत को उतारकर नया यज्ञोपवीत धारण करते हुए आत्मकल्याण के पथ पर आगे बढ़ते हैं। सम्पूर्ण वातावरण वैदिक ऋचाओं से गुंजित होता है। तात्पर्य यह है कि श्रावण आत्मोन्नतिपथ का माह है।

श्रावणी का सन्देश वेदादि ग्रन्थों में दिये उपदेशों से सम्बन्ध रखनेवाला है। बृहदारण्यक उपनिषद् (२६४) में जगमाया की छाया से अभिभूत होकर ''येनाहं नामृता स्यां, किमहं तेन कुर्याम्?'' ''अमृतत्वस्य तु नाशाऽस्ति वित्तेन'' के तंत्री–नाद को सुनने में लीन हुई मैत्रेयी को ब्रह्मर्षि याज्ञवल्क्य ने जो उपदेश दिया था वही श्रावणी का सन्देश है– ''आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो।'' आत्मा का दर्शन करना चाहिए, कैसे? श्रवण, मनन एवं साक्षात्कार (निदिध्यासन) के द्वारा। श्रवण के बिना मनन एवं निदिध्यासन निस्सार है। अथर्ववेद के कुन्तापसूक्त में उद्‌बोधन है–

पृष्ठं धावन्तं हर्योरौच्चैः श्रवसमब्रुवन्।
स्वस्त्यश्व जैत्रायेन्द्रमा वह सुस्रजम्।।

– अथर्व० २०/१२८/१५

अर्थात् हे ऊंचा सुनने वाले! कल्याण मार्ग में विजयी होने के लिए इन्द्र को माला पहिना, आत्मा की स्तुति कर।

इस मन्त्र में आत्मा का वेदमन्त्रों से अलंकरण करने का कितना सुन्दर, मधुर और मनमोहक उपदेश है। आत्मा की धीमी आवाज को कोई ''नीचौः श्रवा'' ज्ञानी पुरुष ही सुन सकता है। इसी दैवी आवाज को सुनाने के लिए ही श्रावणी आकर कर्णकुटी के आसपास जोर–शोर से कहती है –

एतं पृच्छ कुहं पृच्छ, कुहाकं पक्वकं पृच्छ।।

– अथर्व० २०/१३०/५,६

अर्थात् रे नादान! आत्मा के बारे में किसी परिपक्व विचार ज्ञानी भक्त से पूछ।

शास्त्रों ने एक ओर जहां आत्मश्रवण द्वारा अभ्युदय प्राप्ति का उपदेश दिया है, वहीं इसके श्रवणद्वार तक पहुंचने का साधन भी बतलाया हैय गुरुमुख और ग्रन्थमुख।

(क) गुरुमुख से– आत्मा के श्रवण का एक मार्ग अज्ञान को दूर करने वाले गुरुमुख से उपदेश सुनना है। मुण्डकोपनिषद् (१/२/१२) में आया है–

''तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।''

अर्थात् हृदय के काम, क्रोधादि विकारों की समिधाओं को गुरु की अग्नि में डालकर, ब्रह्मज्ञान के महानल में राख बनाकर ही शिष्य सच्ची गुरुसेवा और अग्निहोत्र के तत्व को समझ सकता है।

यद्यपि इस संसार में सच्चे गुरु की प्राप्ति दुर्लभ है, तब ऐसी स्थिति में अन्तःकरण में एक प्रश्न ध्वनित होता है कि क्या सच्चा गुरु न मिलने से आत्मा की आवाज को दबा देना चाहिए? यह कृत्य आत्मा के स्वभाव के सर्वथा विपरीत है। सच्चे मनोनीत गुरु की तलाश में पल–पल मग्न होते हुए भी प्राचीन गुरुओं के रूप में वेदाधारित आध्यात्म ग्रन्थों का सहारा लेना चाहिए।

(ख) ग्रन्थमुख से– आर्ष ग्रन्थ आत्मा को मोक्ष का मार्ग दिखाने वाले दर्पण हैं। वेद, उपनिषद्, दर्शनशास्त्र, स्मृतियां नाना मुख से उसी सच्चिदानन्दस्वरूप जगदीश्वर का गान करते हैं। सत्यग्रन्थ आत्मा के वे गुरु हैं जो विदेह और वीतराग होते हुए भी निष्पक्ष

रूप से ज्ञान का अमर उपदेश किया करते हैं।

इसी श्रावण माह में प्रकृति भी आंखमिचौली खेलते हुए आत्मा की झांकी लेने का अवसर प्रदान करती है। वह ब्रह्मचर्य का महान् पाठ सिखाती है। वर्षा का ठण्डा जल, पेड़–पौधों की सुनहरी हरियाली, नदियों की कलकल ध्वनि, मेघ की घनघोर घटायें, पक्षियों की मधुर ध्वनि आदि हृदय को प्रफुल्लित करते हैं। हृदय की गुफा से भी आत्मा की आवाज सुनाई देती है। प्राचीन ऋषि–मुनि तथा महर्षि दयानन्द ने भी आत्मा की आवाज सुनकर ही प्रेरणा प्राप्त की थी। हमारा प्रिय धर्म इसी हृदय की ही तो पुकार है– ''हृदयेनाभ्यनुज्ञातः यो धर्मस्तं निबोधत (मनु० १/१२०)''। अतः आत्मश्रवण करते हुए कल्याण मार्ग का पथिक बनना ही श्रावणी का सन्देश है।

वेद – मन्त्र

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्।

सामवेद– ३

ऋषिः – मेधातिथिः। देवता – अग्निः। छन्दः – गायत्री।

अर्थ – अपने को सदा आगे प्राप्त कराने वाला, सांसारिक विषयों में पूर्णतः अनासक्त, समस्त बन्धनों से मुक्त अग्निस्वरूप (अग्निः अग्रणीर्भवति, अक्नोपनो भवति, अग्निर्ह वा अबन्धुः) होने से आत्मयोगी, शिष्ट मुमुक्षु और धर्मात्माओं का स्वीकारकर्त्ता (यः सर्वान् शिष्टान् मुमुक्षून्धर्मात्मनो वृणोति) उस प्रभुरूप श्रेयमार्ग का हम हृदय से वरण करते हैं। अक्षय ताप और अजस्र ऊर्जा का स्रोत उपतापक (तपो वा अग्निः) वह ईश्वर हम भक्तों के सकल विकारों को तपस्याग्नि में भष्मीभूत कर काञ्चन सदृश शुद्ध और पवित्र बनाता है। शुद्ध और पवित्रीकरण की इस परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर वह परमदानि! परमेश हमको आत्मिक सुख, शान्ति और समृद्धि आदि सब दैवीय सम्पत्तियों का एक मात्र प्रदाता और स्वामी वही है। वह वरेण्य प्रभु ही हम भक्तों के जीवनयज्ञ का सर्वोत्तम कर्ता, धर्ता और नियामक होता है। यदि हम भक्त जन क्षणिक सुखदात्री प्राकृतिक विलासिताओं की ओर अग्रसर न होकर प्रभु प्रशस्त सदा सुखद निःश्रेयश पथ का अनुगमन करेंगे तो निश्चितरूपेण देवों और पितरों द्वारा उपास्य बुद्धि को प्राप्त कर हम मेधातिथि जैसे मेधावी बनेंगे।

– ✍ डॉ० सत्यकाम आर्य

चलो! कुछ नया करके दिखाते हैं...

चलो! कुछ नया करके दिखाते हैं,
इस जहां को हम सुंदर बनाते हैं,
लगन और परिश्रम से महकाते हैं,
जो व्यथित और परेशान हैं इंसा।
उनके चेहरे पर मुस्कान लाते हैं।।

धन दौलत का हुआ है अभिमान,
पद व प्रतिष्ठा का हुआ है गुमान,
किसी और की नहीं बने पहचान,
अपने में कुछ यूँ बदलाव लाते हैं।
लोगों को हम अब आगे बढ़ाते हैं।।

जीवन में जो लोग बहुत है निराश,
खुशियों की उनको अब न आस,
उनके जीवन महकाने का प्रयास,
उन्हें उम्मीद की किरणें दिखाते हैं।
उनके पथ प्रदर्शक बन जाते हैं।।

अन्नाय व शोषण के जो हैं शिकार,
जो न कर सकते विरोध प्रतिकार।
उनको न मिले हैं, उनके अधिकार,
चलो! उनकी आवाज बन जाते हैं,
उन्हें मदद देकर न्याय दिलाते हैं।।

जो अपने को समझते शक्तिमान,
सब मनुज को न माने एक समान,
उन्हें लगे, इस जहाँ में अमर इंसान,
उन्हें प्रकृति का आईना दिखाते हैं।
राजा से रंक के उदाहरण बताते हैं।।

चलो! कुछ नया करके दिखाते हैं।
इस जहां को हम सुंदर बनाते हैं।।

– ✍ लाल देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
चलभाष – 7355309428

गरीबी मिटाने के लिए सार्थक पहलकी आवश्यकता

– ✍ डॉ. सीतेश आलोक

भारत एक विकासशील देश है। स्वतन्त्रता के चौहत्तर वर्षों में ग़रीबी–अमीरी का दायरा बढ़ता गया। एक तरफ निर्धन वर्ग है जिसके पास दोनों वक्त का भोजन मयस्सर नहीं है और दूसरी ओर 2 प्रति प्रतिशत ऐसे लोग हैं जिनके पास इतना धन है कि बैंक भी छोटे पड़ जाते हैं और विदेशों में अपना धन जमा करते हैं। शासन की बागडोर जिसके हाथ में है वह धनपतियों को आगे बढ़ाने में लगा रहता है। सरकारी विकास की योजनाएँ ज़रूरतमंद लोगों के लिए बनाई जाती हैं लेकिन उन योजनाओं का लाभ पूरी तरह उन्हें नहीं मिल पाता, जिनके लिए बनाई गई होती हैं। यह भ्रष्टाचार और अनैतिकता के कारण है। इसलिए ग़रीबी बनी रहती है। कहने को तो सरकारें जनता की भलाई का काम करती हैं, लेकिन दिखाने के दाँत और खाने के दाँत अलग–अलग होने के कारण ज़रूरतमंद का भला नहीं हो पाता है। ग़रीबी का मूल कारण क्या है और सरकारें ग़रीबी दूर करने के लिए क्या वास्तव में कुछ सार्थक पहल करती हैं, इस पर आधारित है लेख। महान् साहित्यकार, चिन्तक और समाजसेवी डॉ. सीतेश आलोक द्वारा लिखित लेख कई दृष्टियों से उपयोगी है।

– सम्पादक

देश में इतनी ग़रीबी हैं, और इतना भ्रष्टाचार है कि भारतवासी होने का गर्व नित्यप्रति टूटता–बिखरता है। किन्तु आश्चर्य की बात यह है कि कहने को तो ग़रीबी उन्मूलन के लिए कटिबद्ध हमारी सरकार है और सैकड़ों–हजारों परोपकारी संस्थाएँ हैं, अनाथालय तथा सेवाग्राम है और राजनीति तथा समाज सेवक हैं–फिर भी ग़रीबी है कि दिन–प्रति–दिन बढ़ती ही जा रही है। देश की औसत आय यदि बढ़ी है तो यह अमीरों के और अधिक अमीर हो जाने के कारण.....ग़रीबी की स्थिति में सुधार के कारण नहीं।

यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति क्यों है? इस प्रश्न का उत्तर दुर्भाग्यपूर्ण हर किसी के पास है। किसी से भी पूछ देखिए, छूटते ही उत्तर मिलेगा –

– हमारी सरकार निकम्मी है, वह ग़रीबों के लिए कुछ करना ही नहीं चाहती

– सब नेता चोर हैं.....बस, अपनी जेबें भरने में लगे हैं।

– सरकार जो पैसा ग़रीबों के लिए देती है वह अफसर लोग खा जाते हैं, वह ग़रीबों तक पहुँचता ही नहीं।

– अमीरों से पैसा लेकर ग़रीबों में बाँट देना चाहिए.... लेकिन सरकार अमीरों से डरती है।

देश की दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति का एक कारण यह भी है कि हर कोई यह समझता है कि समस्या का हल केवल उसी के पास है। घूम–फिर कर हम सभी सरकार और मन्त्रियों–नेताओं पर सारा दोष मढ़ कर उन्हें गाली देने के अभ्यस्त हो गए हैं। यह देखकर भी कि गालियाँ देते रहने से कोई परिणाम नहीं निकलता, हम निरन्तर 74 वर्षों से सरकार को और मन्त्रियों तथा नेताओं को गालियाँ दिए जा रहे हैं। हमारे लेखक, कवि आदि बड़े आशावादी बनकर बारम्बार किसी सुनहरे भविष्य की प्रतीक्षा में–'वह सुबह कभी तो आएगी' गाए जा रहे हैं। कभी हमारी आशाएँ नई पीढ़ी पर जा टिकती हैं, जो नई ऊर्जा, नए सपनों और नए संकल्प के साथ आगे बढ़कर देश को समृद्धि की ओर ले जाएगी। याद आता है, 1953 में बनी एक फ़िल्म में गीत था–'कहानी तिरपन, तिरसठ साल की...जिसमें 1963 तक देश के समृद्ध हो जाने का सपना था। ऐसे ही, उन्हीं दिनों एक गीत लोकप्रिय हुआ था–'आने वाली दुनिया में सबके सिर पर ताज होगा....किन्तु परिणाम जो है, वह हमारे सामने है।

सच पूछा जाए तो यह कहना नितान्त झूठ होगा कि देश ने पिछले 74 वर्षों में कोई प्रगति नहीं की। वास्तव में प्रगति तो बहुत हुई है किन्तु केवल आर्थिक एवं तकनीकी क्षेत्रों में–साथ ही, नैतिकता का बड़ी ही तेज़ी के साथ पतन भी हुआ। यही वह कारण है कि देश में जहाँ अमीर लोग निरन्तर अमीर होते जा रहे हैं, वहीं ग़रीबों की संख्या ही नहीं, उनकी ग़रीबी भी अत्यन्त

दयनीय एवं वीभत्स रूप ग्रहण करती जा रही है–और ग़रीबी के साथ ही यदि अपराध भी बढ़े तो क्या आश्चर्य!

देश में जो आर्थिक प्रगति हुई वह तेज़ी से बढ़ती जनसंख्या के दबाव को देखते पर्याप्त सिद्ध नहीं हुई। उत्पादन ने जहाँ दस लोगों का पेट भरा, वहीं बीस और खाने वाले उत्पन्न हो गए। उद्योग ने जहाँ पहले से ही भटकते बेरोज़गारों को रोज़गार प्रदान किया, वहीं उससे भी दुगने लोग बेरोजगारों की क़तार में जुड़ते चले गए। साथ ही, कहीं अपनी निराशा में तो कहीं सुसंस्कारों के अभाव में, लोगों में निष्क्रियता और नशे की प्रकृति जागृत हुई।

एक ओर तो सरकार ने सबसे सुखमय भविष्य के वादे किए और दूसरी और राजनैतिक दलों ने, दलगत स्वार्थ के नाते, लोगों को निराशा और उनके आक्रोश को भुनाकर, उन्हें सरकार को गाली देते रहना सिखाया। आज कोई भी–चाहे सरकार में या राजनैतिक पार्टियों में या सामाजिक संगठनों में, कोई भी ऐसा नहीं है जो लोगों को सिखा सके कि जहाँ एक ओर स्थिति सुधारने का दायित्व सरकार पर है वहीं, दूसरी ओर, लोगों को स्वयं भी, अपने हित में, हर सम्भव प्रयास करते रहना चाहिए।

कोई भी जनसाधारण को यह समझाने का साहस नहीं करता कि इतनी तेज़ी से खाने वालों और रोज़गार माँगने वालों की संख्या बढ़ती रही तो कोई भी सरकार न तो सबका पेट भर सकती है और न उन्हें रोज़गार प्रदान कर सकती है। कोई भी, न तो उन्हें बच्चे पैदा करने से रोकने का प्रयास करता है और न यह समझाने का कि शराब, बीड़ी आदि व्यसनों से पैसा बचाकर वे स्वयं भी, कुछ हद तक ही सही, अपना हित कर सकते हैं। इतना ही नहीं, जब तक उनके पास रोज़गार नहीं है वे अपनी झुग्गी के पास की नाली ही साफ़ रख सकते हैं, मच्छर उत्पन्न करने वाला जमा हुआ पानी ही साफ़ कर सकते हैं।

किन्तु सब जानते हैं कि ऐसी सलाह देने से उनकी लोकप्रियता में कमी ही आएगी–जब कि उन्हें उकसा कर, उनके दुःखों पर आँसू बहाते हुए, सरकार को गाली देने से वे जनता का दिल जीत सकते हैं।

जनसंख्या नियन्त्रण का दुर्भाग्यपूर्ण पक्ष यह है कि जहाँ अमीरों ने सन्तान–संख्या नियन्त्रित करके अपनी और सुधारी है, ग़रीब परिवारों में अनेक सन्तान होने के कारण उनकी आर्थिक स्थिति और भी बिगड़ती जा रही है। उनके बच्चे न तो पढ़–लिख पाते हैं और न स्वस्थ ही रह पाते हैं। ग़रीब परिवारों में बढ़ती निराशा और बढ़ते आक्रोश के कारण रोग ही नहीं, सामाजिक अशान्ति एवं अपराध–वृत्ति में भी निरन्तर विस्तार हो रहा है।

कुछ समय पूर्व, एक राजनैतिक पार्टी ने संसद में यह प्रस्ताव रखा था कि अपंगों, विकलांगों तथा विक्षिप्त व्यक्तियों की शल्य–चिकित्सा के लिए क़ानून बनाया जाए, जिससे ऐसे बच्चे न उत्पन्न हों जिन्हें माता–पिता का समुचित प्रेम एवं संरक्षण नहीं मिल सकता। किन्तु मानवीय अधिकार के नाम पर, ऐसा नहीं होने दिया गया। सच पूछा जाए अत्यंत निर्धन एवं बेरोजगार व्यक्तियों को भी सन्तान को समुचित समय, प्यार, संरक्षण एवं विकास के साधन न दे सके तब तक उसे सन्तान उत्पन्न करने का कोई अधिकार नहीं। किन्तु ऐसा क़ानून बन गया तो ग़रीबों के नाम मगरमच्छी आँसू बहाने वालों को, नंगे–भूखे भला कहाँ मिलेंगे? इसलिए ऐसा कोई क़ानून नहीं बन पाया। इतना ही नहीं, यदि ऐसा कोई नियम बने कि जो स्वयं आर्थिक रूप से असमर्थ एवं विपन्न हैं वे एक से अधिक सन्तान नहीं उत्पन्न कर सकते, तब भी देश की निर्धनता में पर्याप्त सुधार हो सकता है। किन्तु छद्म सुधारवादी ऐसा प्रस्ताव भी भला क्यों मानेगे?

यह हम सभी जानते हैं, कि जीवन–यापन के लिए भोजन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जीवन में 'दाल–रोटी' का महत्व शरीर के पोषण के लिए ही नहीं, अध्यात्म को सुदृढ़ एवं यथार्थ भूमि प्रदान करने के लिए भी है। यह बात, कुछ समय पहले ग़ज़ल में कुछ यों कही थी।

देखिए नाचता है दिल कैसे
दाल–रोटी भरा समाँ तो हो!

भारतीय दर्शन के कट्टर समर्थकों ने भी, 'भूखे भजन न होय गापाला.....' कहकर सदैव ही 'दाल–रोटी' के महत्व को स्वीकार ही नहीं, रेखांकित भी किया है। फिर भी, जहाँ एक ओर जनता को भोजन दिलवाना सरकार का उत्तरदायित्व है, वहीं जनता का भी कर्तव्य है कि वह भूख की समस्या को और अधिक विकराल रूप न दे। अतः जब हम ग़रीब जनसाधारण को निर्बल एवं अज्ञान कहकर उसे निर्णय लेने में अक्षम बताते हैं तो हमारा, उन सब का जो ग़रीबों को भी यथासम्भव

शिक्षित करें और सरकार को ग़रीबी की जड़ काटने के लिए कुछ कठोर निर्णय भी लेने दें।

पिछले कुछ दशकों में ग़रीबी हटाने के नाम पर जो काम हुए हैं, उनमें सरकारी नौकारियों में आरक्षण देने के अतिरिक्त कम मूल्य पर अनाज, चीनी, मिट्टी का तेल आदि आदि की व्यवस्था राशन तथा सब्सिडी सत्ता में आने के लिए सस्ता चावल, मुफ़्त प्रारम्भिक शिक्षा, मुफ़्त बिजली, मुफ़्त पानी, अवैध झुग्गियों, कॉलोनियों आदि की वैधता प्रदान करने की घोषणाएं करती रही हैं, एक–दूसरे की देखा–देखी के फल–स्वरूप, सभी दल मुफ़्त मोबाइल, कहीं मुफ़्त टी.वी.मुफ़्त लैपटाप, मुफ़्त साइकिलें भी बाँटीं जा रही हैं। कुछ समय पूर्व, एक राष्ट्रीय पार्टी ने किसानों के 50,000 करोड़ रुपये के कर्ज़ माफ़ करके एक और 'माफ़ी–योजना' का सूत्रपात किया। उस बड़ी कर्ज़ माफ़ी के साथ भी ऐसी कोई व्यवस्था नहीं की गई कि भविष्य में ऐसी कोई स्थिति न आए कि किसान पुनः ऋण के जाल में उलझने लगे। शीघ्र ही, उनके भूखे मरने की नौबत आ गई, किसानों द्वारा बड़े पैमाने पर आत्महत्याओं की घटनाएँ होने लगीं और उनके लिए सरकारों को पुनः उत्तरदायी ठहराया गया। पुनः कर्ज़ माफ़ी के लिए चतुर्दिक दबाव बनने लगे। फलस्वरूप होल में, एक बड़े दल ने चुनाव जीतने के लिए बड़े पैमाने पर कर्ज़–माफ़ी का वादा किया, जिसका बोझ सरकार पर एक लाख करोड़ रुपये पड़ रहा है। इतना ही नहीं, देखा–देखी अनेक अन्य प्रदेशों में भी सामूहिक कर्ज़ माफ़ी के लिए दबाव बन रहा है। वहाँ भी सरकारों को, विवश होकर कर्ज़ माफ़ करने ही पड़ेंगे।

मानवता के नाम पर, कर्ज़ में डूबे व्यक्ति की सहायता में कोई दोष नहीं है। दोष है, तो बस यह कि हम समस्या के 'सतही हल' तक पहुँचने का प्रयास कभी नहीं करते। किसानों के संदर्भ में ही सोचें तो, कभी समस्या की जड़ तक पहुँचकर यह नहीं देख पाते कि वहाँ एक कारण तो यह है कि, पीढ़ी–दर–पीढ़ी किसान का परिवार लगभग चार गुना, सोलह गुना होकर बढ़ता है, किन्तु ज़मीन कभी नहीं बढ़ सकती। फिर यह भी कि कभी –कभी अकाल की स्थिति भी आती रहती है–जिसके लिए वे कोई प्रावधान नहीं रखते। इस पर कभी, ग्रामीण समाज में, विवाह, सन्तान, जन्म, उत्सवों के अवसरों पर भी धूम–धाम के लिए बड़े व्यय का रिवाज है, कर्ज़ लेकर भी।

इस बीमारी को जड़ से दूर करने का प्रयास पिछले सत्तर वर्षों में कभी नहीं हुआ। हमारी सरकार आज़ादी के बाद से आर्थिक विकास की योजनाएँ ही बनाती रही.....नैतिक विकास की ओर कभी उसका ध्यान ही नहीं गया। परिणाम यह कि विकास की गति पर अव्यवस्था का साया सदैव ही रहा, और जो कुछ विकास हुआ भी, उसका फल इने–गिने हाथों में जाता रहा।

इति

वेद में राष्ट्रीय प्रार्थनाएँ

स नो रास्व राष्ट्रमिन्द्रजूतं तस्य ते रातौ यशसः स्याम । (अथर्ववेद 6/39/2)
हे ईश्वर ! आप हमें परम ऐश्वर्य सम्पन्न राष्ट्र को प्रदान करें । हम आपके शुभ–दान में सदा यशस्वी होकर रहें ।

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः।
दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ।। (अथर्ववेद 12/1/62)

हे मातृभूमि ! हम सर्व रोग–रहित और स्वस्थ होकर तेरी सेवा में सदा उपस्थित रहें । तेरे अन्दर उत्पन्न और तैयार किए हुए – स्वदेशी पदार्थ ही हमारे उपयोग में सदा आते रहें । हमारी आयु दीर्घ हो । हम ज्ञान–सम्पन्न होकर – आवश्यकता पड़ने पर तेरे लिए प्राणों तक की बलि को लाने वाले हों

समय के साथ स्वयं को उपयोगी बनाने की चुनौती

– ✍ डॉ. ए.कुमार

पुरानी कहावत है 'समय के घोड़े पर जो सवारी करने में माहिर होता है वह अपने गंतव्य तक पहुंच जाता है और जो सवारी न करके अपने लिए विशेष समय की प्रतिक्षा करता रहता है, वह न तो कभी घोड़े पर सवार हो पाता है और न ही अपने गंतव्य तक ही पहुंच पाता है।' कहने का मतलब यह है कि समय का हम जितना ही सदुपयोग करेंगे उतना ही हम अपनी सफलता के नजदीक पहुंचते जायेंगे। समय का सम्मान और उपयोग जितना करेंगे उतना ही समय भी हमें सम्मान और संतुष्टि देगा। जाहिरतौर पर कॅरियर बनाने के लिए हमारे सामने जो चुनौतियां हों उनका हम समय का सदुपयोग करके ही मुकाबला कर सकते हैं। आज स्पर्धा का युग है। ऐसे में हमें चाहिए कि आए हुये अवसर का सदुपयोग करते हुये समझबूझ के साथ कठिन परिश्रम करने में जुट जायें। एक सफलता मिलने के बाद आगे की सफलता की राह खुल जाती है। विस्टन चर्चिल ने एक बार कहा था–सफलता कभी अंतिम नहीं होती और विफलता घातक नहीं होती, जो मायने रखता है वह है साहस। कहने का मतलब यदि हमारे अंदर साहस, शक्ति, परिश्रम करने की दृढ़ता और समय(अवसर) का सदुपयोग करने की इच्छाशक्ति है दुनिया की कोई भी ताकत नहीं जो आप को सफलता के मार्ग से डिगा दे।

समय की समझ जरूरी

हर इंसान की जिंदगी में कभी न कभी एक दिन ऐसा समय जरूर आता है, जब उसे वक्त की ताकत के बारे में समझ आती है। आप एवरेस्ट की चोटी पर चढ़ने जा रहे हैं या दूसरा कोई लक्ष्य ले आगे बढ़ रहे हैं, हर कार्य में शक्ति चाहिए ही। जिस शिखर पर पहुंचने के लिए आप आगे बढ़ रहे हैं, देखना यह है कि वह आप के लिए कितनी महत्त्वपूर्ण है। यदि वही सबसे महत्त्वपूर्ण है तो उसके लिए जितनी ऊर्जा चाहिए, जितनी दृढ़ता चाहिए, जितनी संकल्पशक्ति चाहिए और जितनी ईमानदारी चाहिए, क्या हममें आ चुकी है, यदि नहीं आ पाई है तो भी निराश होने की जरूरत नहीं है। आगे बढ़िये, आप को इससे ही सफलता के नये द्वार खुलेंगे। कहा जाता है–जब एक द्वार बंद हो जाता है तो हजारों द्वार खुलते भी हैं। लेकिन देखना यह होता है कि उन द्वारों को हम अपनी 'विजय' के लिए कितना सदुपयोग कर पाते हैं।

अमूमन देखा यह जाता है कि छुट्टियां आईं कि हम मौज–मस्ती करने लगते हैं। वह चाहे गर्मी की छुट्टियां हों या किसी पर्व–त्योहार की। इससे हमारा संकल्प, परिश्रम करने की आदत और ईमाननारी में कमी आती है। हम अपने साथ ही साथ परिवार की भावनाओं के साथ अन्याय करने लगते हैं। आज हाई फाई का जमाना है। कदम–कदम पर चुनौतियां हैं। पहले जैसा अब लोगों के पास वक्त नहीं है। कोई किसी की मदद करने के लिए तभी आगे आना चाहता है जब वह देखता है कि उससे उसका कोई स्वार्थ सिद्ध होगा कि नहीं। इस लिए खुद को इतना बुलंद कर लें कि जमाना कदमों में झुकने के लिए मजबूर हो जाये। इसके लिए फिर वही बात आती है कि अवसर और वक्त का ठीक तरह से उपयोग करें और पीछे मुंड़कर न देखें।

आगे बढ़ते वक्त तमाम चुनौतियों के साथ अपनी कमियां भी उजागर होती जाती हैं। इन दोनों से पार पायें बिना कुछ भी हासिल होने वाला नहीं है। लेकिन कुछ विशेष बातों पर गौर करके हम अपनी मंजिल को आसानी से भी हासिल कर सकते हैं। इन्हें हम सफलता के सूत्र भी कह सकते हैं।

सेहत से कोई समझौता न करें– कहा गया है–*शरीर माध्यम खलुधर्म साधनम्* यानी स्वस्थ शरीर से ही सभी कार्य फलीभूत होते हैं। अच्छी शरीर या स्वस्थ शरीर अथवा तंदुरुस्त शरीर के लिए जरूरी है कि हम उन

नियमों का पालन करें जिससे शरीर स्वस्थ रहता है। और स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है। कहने का मतलब रोजाना वक्त निकाल कर सुबह के वक्त एक या आधे घंटे तक आसन–व्यायाम करें। इससे जहां शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है वहीं पर शरीर में चुस्ती, फुर्ती और ऊर्जा का एहसास हमेशा बना रहता है। कठिन–सा–कठिन कार्य चुस्त–दरुस्त शरीर वाला व्यक्ति आसानी से कर लेता है। इसी तरह वक्त जब मिले तो ध्यान भी लगायें, इससे याददास्त मजबूत होती है और मन की एकाग्रता बढ़ती है। जाहिरतौर पर ये दोनों चीजें सफलता की प्राणवायु की तरह हैं।

अपनी कमियों को ईमानदारी से दूर करने का प्रयास करें – हर इंसान में किसी न किसी रूप में कोई न कोई कमी जरूर होती है। उन कमियों के कारण वह जो चाहता है, उसे वह हासिल नहीं कर पाता है। ऐसा नहीं है कि जो लोग दुनिया के सबसे सफल व्यक्तियों में रहे हैं उनमें कोई कमी नहीं थी। उनमें भी थी, लेकिन उन्होंने अपनी कमियों को बहुत ही ईमानदार तरीके से दूर किया। सुबह–सायं जब भी वक्त मिले, अपनी कमियों को दूर करने के बारे में संकल्प करें। हमेशा सकारात्मक विचारों और व्यवहारों को अपनाने पर गौर करें। इससे अवचेतन मजबूत और सकारात्मक बनता है। अमूमन, सभी लोग दूसरों की कमियों को ढूढने में तो बहुत सारा वक्त जाया कर देते हैं, लेकिन अपनी एक छोटी सी भी कमी पर कभी नजर नहीं डालते। जिंदगी में इस वजह से व्यक्ति वह हासिल नहीं कर पाता जो वह चाहता है।

अपनी जरूरत के मुताबिक – जिस प्रतियोगिता की तैयारी करनी है, उसके लिए उसके पाठ्यक्रमों का निर्धारण अपनी जरूरत के मुताबिक करें। दूसरों के द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम से कोई तैयारी न करें। कठिन प्रतियोगिताओं की तैयारी खुद के बनाये पाठ्यक्रम से करने पर उतनी मेहनत नहीं करनी पड़ती जितनी दूसरों के बनाये पाठ्यक्रमों से। खाली समय में इधर–उधर में वक्त न गुजार कर उस विषय पर गौर करें, जिसके जरिए प्रतियोगिता में बैठना है व सफलता हासिल करना है। हां, इतना जरूर ध्यान जरूर दें किसी रोजगार के लिए किसी अंधी दौड़ में शामिल न हों। इससे समय और अवसर दोनों नष्ट होते हैं।

सुनियोजित होना जरूरी – कार्य छोटा हो या बड़ा सुनियोजित तरीके से करने पर वह सहजता और कम परिश्रम में हो जाता है। यही बात लक्ष्य हासिल करने के मामले में भी होता है। प्रतिदिन के लिए रोज़नामचा बना लेना चाहिए। इससे हर कार्य ठीक समय पर ठीक ढंग से होता जाता है। आज का कार्य कल पर न टालें। खानापूर्ति करने की आदत से दूर रहना बहेतर होता है। अपने को सुनियोजित करने से दूसरे भी आप के समय और तैयारी को महत्त्व देने लगते हैं। परिवार और मुहल्ले में सम्मान की नजर से लोग देखने लगते हैं।

सामान्य ज्ञान का दायरा विस्तृत करें

कॅरियर से जुड़ी तकरीबन हर प्रतियोगिता में सामान्य ज्ञान का पेपर अतिमहत्त्वपूर्ण होता है। कठिन विषय की तैयारी करते वक्त जब पढ़ते–लिखते थकान महसूस हो तो सामान्य ज्ञान की पुस्तक खोलकर मन को ऊबन से उठाने के लिए इसकी तैयारी करते जायें। इससे समय का सदुपयोग होता है और सभी विषय की तैयारी भी ठीक ढंग से होती जाती है। इससे मन में यह बात नहीं रहती कि 'सामान्य ज्ञान की तैयारी के लिए वक्त ही नहीं मिलता।'

सहपाठियों और मित्रों के साथ विषय संबंधी चर्चायें जरूर करें – तैयारी के क्रम में सुबह–सायं जब भी वक्त निकले न निकले तो निकालकर अपने सहपाठियों और मित्रों के साथ प्रतियोगिता संबंधी तैयारी के बारे में चर्चाएं बराबर करते रहें। इससे जहां ज्ञान में बढ़ोत्तरी होती है वहीं पर आत्मविश्वास बढ़ाने में भी मदद मिलती है। इसका लाभ तुरंत भले ही न दिखता हो लेकिन भविष्य में इसके तमाम फायदे होते हैं। उन सफल लोगों से भी सम्पर्क बढ़ायें जो कठिन और सरल प्रतियोगिताओं में सफल होकर आज बड़े पदों पर रहकर देश की सेवा कर रहे हैं। इससे उनके अनुभव का लाभ मिलता है और तैयारी सरल और सहज लगने लगती है।

कृतज्ञता की कीर्ति

– ✍ शकुंतला देवी

संस्कृत के 'कृ' धातु से कीर्ति शब्द बना है। 'कृ' का मायने होता है 'कृत्य' का परिणाम। कीर्ति और ख्याति दोनों एक होते हुए भी, अलग भाव रखते हैं। ख्याति प्रसिद्धि के अर्थ में मूलतः मिलती है, लेकिन कीर्ति कर्म या कार्य का परिणाम है। प्रसिद्धि उत्तम कार्य या सुकर्म का परिणाम है, लेकिन कीर्ति कर्म या कार्य का परिणाम है। कृतज्ञता उपकार के बदले 'धन्यवाद' या आभार जताने के अर्थ में व्यक्त की जाती है। जो उपकार करता है, उसे भी कीर्ति मिली और जो उपकार के बदले 'धन्यवाद' किया, उसे भी कीर्ति मिली। दोनों सकारात्मक या शुभ लक्षण को प्रकट करते हैं। दोनों (उपकार व कृतज्ञता) यदि जीवन के हिस्से बन जाएं और हमारी आदत में शुमार हो जाएं तो, अंतर्मन में पवित्रता, सहिष्णुता और विनम्रता का विस्तार होता है। जितना हमारे अंतर्मन में सद्गुणों का समावेश होता जाता है, उतना हमारा आत्मिक विकास और विस्तार होता जाता है। हमारी संस्कृति में आभार प्रदर्शन की परंपरा बहुत पुरानी है। सृष्टि उत्पत्ति से लेकर अब तक मानव ने हर दिशा में प्रगति की है। ज्ञान–विज्ञान में तो वह बहुत आगे बढ़ गया है। यदि कोई क्षेत्र अभी उन्नति की धारा में तीव्रता नहीं हासिल कर पाया है तो, वह क्षेत्र है अंतर्मन का विज्ञानमय होना। जीवन विज्ञान का विकास अभी शैशव अवस्था में है। उपकार और कृतज्ञता दोनों जीवन विज्ञान के आधार हैं। यदि मानव जीवन में कृतज्ञता और उपकार की भावना न हो तो उसकी सर्व–श्रेष्ठता का कोई मायने नहीं है। यही अध्यात्म है। यही जीवन दर्शन है। आत्मिक विकास का प्रवाह उपकार और कृतज्ञता की नदी से प्रवाहित होता है। सत्यम–शिवम्–सुन्दरम् का गान इन दोनों सद्गुणों से ओत–प्रोत होता है। शुभत्व और शिवत्व दोनों में समावेशित हैं। मन की दिव्यता इससे ही झलकती है। इसलिए इन दोनों सद्गुणों को हमेशा अंतर्मन में पिरोए रखना चाहिए।

आध्यात्मिक होना और आध्यात्मिक कहलाना दो चीजें हैं। आध्यात्मिक होते ही व्यक्ति इस सकल जगत् के प्रति कृतज्ञता से भर जाता है। वह अंदर और बाहर से एक जैसा होता है। उसके रोम–रोम में कृतज्ञता रूपी अमृत रस टपकता दिखाई पड़ता है। उसका प्रत्येक स्पंदन कृतज्ञता के भावों से भूषित होता है। वह प्रत्येक प्राणी में उसी परमात्मदेव का दर्शन करता है जैसा अपने अंदर। दैवीय शक्ति से लबालब भरा हुआ ऐसा व्यक्ति, सच्चे मायने में साधक होता है। पवित्रता, करुणा, दया, प्रेम, सत्य और अहिंसा उसके जीवन के आधार बन जाते हैं।

मानव में बुद्धि–तत्त्व, चेतना–तत्त्व और आत्म–तत्त्व की सर्वोच्चता के कारण उसकी उन्नति के सबसे अधिक अवसर और आयाम हैं। यह सब परम चेतना जिसे परमात्मा कहते हैं ने प्रदान की है। इस लिए मानव का कर्तव्य है कि वह हर पल उस जगदीश्वर के प्रति कृतज्ञता के भाव से भरा रहे। कृतज्ञता को वेद में आंतरिक विकास का लक्षण बताया गया है। मानव का जितना ही अंतरतर का विस्तार होता जाता है उतना ही वह दैवीय गुणों से सम्पंन होता जाता है। सद्गुणों से सम्पन्नता यह बताती है कि जीवन का उत्तरोतर विकास हो रहा है।

पुरूषार्थ के भेद – जो अप्राप्त वस्तु की इच्छा करनी; प्राप्त का अच्छी प्रकार रक्षण करना; रक्षित को बढाना और बढे हुये पदार्थों का सत्यविद्या की उन्नति में तथा सबके हित करने में खर्च करना है; इन चार प्रकार के कर्मों को **पुरूषार्थ** कहते हैं।

परोपकार – अर्थात् अपने सब सामार्थ्य से दूसरे प्राणियों के सुख होने के लिए जो तन, मन, धन से प्रयत्न करना है; वह **परोपकार** कहाता है।

– महर्षि दयानन्द सरस्वती

ग्रीन हाउस गैसों को खत्म करने में कारगर है आहार विज्ञान

कोरोना की पहली लहर में यह चर्चा हुई कि मांसाहारी लोगों को शाकाहारी लोगों की अपेक्षा संक्रमित होने का खतरा बहुत अधिक है। दूसरी लहर में यह वैज्ञानिक प्रमाण में भी सामने आ गया है। मैरीलैण्ड के जॉन स्कूल हॉप्किंस ब्लूमबर्ग स्कूल ऑफ पब्लिक हेल्थ ने अपने हालिया रिसर्च में यह पाया है कि कोरोना होने पर शाकाहारियों में हालात बिगड़ने का खतरा 73 फीसदी तक कम रहता है। 2,884 फ्रंटलाइन वर्कर्स पर हुई रिसर्च का दावा भारत में आयुर्वेद के दावे से मेल खाता है। आयुर्वेद के अनुसार कोविड में शाकाहारी मांसाहारियों से कहीं बेहतर स्थिति में हैं। जो रिसर्च मैरीलैण्ड में जुलाई–सितम्बर 2020 में किया गया था उसमें अमेरिका, जर्मनी, फ्रांस, ब्रिटेन, इटली, स्पेन जैसे बहुत अधिक कोरोना से प्रभावित फ्रंटलाइन वर्कर्स को शामिल किया गया। रिसर्च में पता चला कि शाकाहार से बेहतर रोगप्रतिरोधक क्षमता व्यक्ति में विकसित होती है, इस लिए कोरोना या दूसरी किसी घातक बीमारी से व्यक्ति उतना प्रभावित नहीं होता जितना कि मांसाहारी व्यक्ति होते हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ की संस्था फूड एंड एग्रीकल्चर ऑर्गनाइजेशन की 2013 की रिपोर्ट के मुताबिक दुनियाभर में 90 प्रतिशत से अधिक मांस फैक्ट्री फार्म से आता है। इन फार्मों में जानवरों को ठूस–ठूसकर भरा जाता है और साफ–सफाई पर गौर नहीं किया जाता है। इस वजह से वायरल बीमारियां होने का खतरा काफी बढ़ जाता है। हाल में गुजरात में फैली वायरल बीमारी कांगो बुखार की वजह संक्रमित जानवर थे, जिनके मांस खाने से बीमारी आम लोगों में फैली। इसी विषय पर विश्व स्वास्थ्य संगठन की वर्ष 1981 की मेडिकल रपट में मांसाहार से 134 बीमारियाँ पैदा होने की बात कही गई हैं। इसी तरह हेल्थ एजूकेशन काउंसिल के अनुसार विषाक्त भोजन से होने वाली 90 प्रतिशत मौतों का कारण मांसाहार ही होता है। 2016 में नेशनल एकेडमी ऑफ साइंस की स्टडी के अनुसार अगर दुनिया की सारी आबादी मांस छोड़कर सिर्फ शाकाहार खाने लगे तो 2050 तक ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में 70 प्रतिशत तक कमी लाई जा सकती है। वैज्ञानिकों के अनुसार ब्लड शुगर को कंट्रोल करने के लिए दिनभर में यदि 50 प्रतिशत फल और सब्जियों का सेवन करें तो मधुमेह पर काबू पाया जा सकता है। आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के शोध के अनुसार यदि आहार में रेड मीट को हटा दें तो कोलोन कैंसर होने का खतरा काफी कम हो जाता है। इसी तरह फल–सब्जियों के अधिक सेवन से कैंसर होने का खतरा बहुत कम होता है। जर्मनी के प्रो. एग्नरबर्ग ने अपने शोध से यह साबित किया कि अंडा 51.83 प्रतिशत कफ पैदा करता है। इससे जो लोग यह तर्क करते हैं कि यह कफ नाशक है का खंडन होता है। इसी प्रकार वयस्क व्यक्ति के लिए प्रोटीन की जितनी आवश्यकता होती है उसे दूध, अन्न या फल के माध्यम से पूर्ण किया जा सकता है। आहार विज्ञान के अनुसार बैठकर काम करने वाले एक व्यक्ति को प्रतिदिन 2.400, मध्यम दर्जे के व्यक्ति को 2.800 और भारी श्रम करने वाले व्यक्ति को 3.900 कैलोरी की आवश्यकता होती है। क्या कोई चिकित्सक यह प्रमाणित कर सकता है कि प्रतिदिन 28 या 38–44 अंडे खाकर इतनी कैलोरी ऊर्जा प्राप्त कर सकता है? क्या इन अंडों में वे सभी चीजें होती हैं जो 'पूर्ण आहार' में होनी चाहिए? वैज्ञानिक शोध के अनुसार एक अंडे में केवल 87.5 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है। निष्कर्ष, तथ्य और प्रभाण को निष्पक्ष ढंग से स्वीकार करने का यदि हममें साहस है तो शाकाहार के सम्बंध में वैज्ञानिक तथ्यों को स्वीकार करने में आगे आना चाहिए।

वैज्ञानिक प्रमाणों से यह साबित हो चुका है कि शाकाहारी सात्विक भोजन से न्यूरो इन हीबीटरी ट्रांसमीटर पैदा होते हैं जिनसे मस्तिष्क शांत रहता है। वहीं पर तामसिक यानी मांसाहारी भोजन से मस्तिष्क में उत्तेजक तंत्रिका संचारक (न्यूरो इक्साइटेटरी ट्रांसमीटर्स) उत्पन्न होते हैं जिससे मस्तिष्क अशांत रहता है। जाहिर है गाय, भैंस, बकरी, भेंड़, खरगोश और अन्य शाकाहारी जन्तुओं में सिरोटोगिन की अधिकता के कारण ही उनमें शांत प्रवृतियाँ पाई जाती हैं। इसी तरह शेर, भेड़िया और चीते जैसे अनेक मांसाहारी जन्तुओं में सिरोटोनिन के अभाव में

उनमें क्रूरता, आक्रमकता, अशान्ति और अधिक चंचलता पाई जाती है। यदि इसे आयुर्वेद की भाषा में कहें तो मांसाहार से तामसिक प्रवृति बढ़ जाती है, इससे कोई भी प्राणी हिंसक, क्रोधी और क्रूर हो सकता है। जाहिर है कि प्रकृति प्रदत्त स्वभाव और प्रवृति को कोई भी जीव नहीं बदल सकता, लेकिन मानव को यह वरदान मिला हुआ है कि वह अपनी बुद्धि से अपने स्वभाव को आहार–विहार और तप के माध्यम से अच्छा या खराब बना सकता है। इस लिए शेरदिल का उदाहरण बहादुरी में तो दे देते हैं लेकिन जब हिंसक, क्रूरता और आक्रमकता की बात आती है तो शेर को सबसे अधिक हिंसक जीव माना जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि मांस खाकर शेर बहादुर नहीं बनाता, बल्कि शेर की प्रवृति ही खूंखार है, जिसे हम भूलवश बहादुरी कहते हैं। हम शेर या बाघ के स्वभाव का सूक्ष्मता से निरीक्षण नहीं करते हैं। हम इस बात को क्यों भूल जाते हैं कि शेर और बाघ सहित सभी मांसाहारी जंगली पशु हमेशा अपने कमजोर शाकाहारी प्राणियों का ही शिकार करते हैं। इस लिए हम यह नहीं कह सकते हैं कि हमें शेरदिल बनना है, बल्कि हमें संवेदना से परिपूर्ण परोपकारी हृदय वाला मानव बनना चाहिए। मानव को सही मायने में मानव बनने का प्रयास करना चाहिए। यानी हमें दयालु, विनम्र, अहिंसक, सदाचारी और परोपकारी बनना चाहिए। शेर की तरह दूसरों को मारकर अपना पेट पालना तो पशुता का कार्य है, मानव का कार्य और स्वभाव तो जीवन लेना नहीं बल्कि जीवन देना होना चाहिए। यदि हम भी जंगली जानवरों की तरह निरीह प्राणियों को मारकर अपनी उदरपूर्ति करते हैं तो हममें और जानवरों में अन्तर क्या रह जाता है? दूसरी बात, जगंली हिंसक जानवर को तो कुदरत ने उन्हें हिंसक बनाया ही है, क्या मानव को भी कुदरत ने जन्मजात हिंसक बनाया है? यदि हिंसक बनाया है तो हमें अपने बच्चों को भी भूख लगने पर बिना विचार किए कुछ भी खा लेना चाहिए। इस लिए हमें यह नहीं कुतर्क करना चाहिए कि मानव को हर तरह की खाने–पीने की आजादी है। क्या इस बात को हम नकार सकते हैं कि हमारी आजादी वहीं तक है जहाँ तक दूसरों की आजादी पर कोई आँच न आती हो। बुद्धिमानी और समझदारी की बात तो यह होनी चाहिए कि हम दूसरों को अपने स्वाद, शौक और स्वार्थ में किसी भी हालात में किसी भी तरह की क्षति न पहुँचाएं। यदि हमें दूसरों के द्वारा क्षति पहुँचाने पर बुरा लगता है या किसी प्रकार की बेइंतजामी से तकलीफ पहुँचती है तो हमें भी दूसरों के सम्बंध में ऐसा ही सोचना चाहिए। वह चाहे मानव के सम्बंध में हो या अन्य किसी भी प्राणी के सम्बंध में।

आहार की वैज्ञानिकता और आहार पर हुए कुछ विश्वासनीय शोधों और खोजों से ऐसे तथ्य सामने आए हैं जिनसे प्रमाणित होता है कि सिरोटोनिन के अभाव में स्वभाव में किस प्रकार का बदलाव आ जाता है। सन् 1993 के जर्नल ऑफ क्रिमिनल जस्टिस एजूकेशन में फ्लोरिडा स्टेट के अपराध वैज्ञानिक सी.रे. जैफरी ने अपने गहन अनुसंधान से यह पाया कि जैसे ही किसी जन्तु में सिरोटोनिन की मात्रा कम या इसके अभाव में मस्तिष्क प्रतिकूलताओं से भर जाता है और जन्तु का स्वभाव आक्रामक और अत्यंत क्रूर हो जाता है। गौरतलब है वैज्ञानिक तथ्य यह कहते हैं कि मांस में ट्रिप्टोपेन नामक अमीनों अम्ल होता ही नहीं है। इससे मस्तिष्क में क्रूरता और आक्रामकता का उफान आने लगता है। इस सम्बंध में एक अन्य शोध डॉ पॉल ग्रीन गार्ड ने किया । उन्होंने भी अपने शोध के दौरान यह पाया कि यूरोपीय देशो में अनिद्रा की सार्वभौमिक बीमरी का एक बड़ा कारण यूरोपीय देशों के लोगों का मांसाहारी होना है। इस गहन शोध पर डॉ. ग्रीन को सन् 2000 में नोबल पुरस्कार प्राप्त हुआ।

अमेरिका के हार्वर्ड विश्वविद्यालय के रिचर्ड रेंधम और नेन्सील कांकलिन व ब्रिटेन व मिनेसोटा विश्वविद्यालय के ग्रेग लेडन के रिसर्च से खुलासा हुआ कि पका हुआ शाकाहारी भोजन मानव मस्तिष्क की सबसे बड़ी वृद्धि का कारण है। वैज्ञानिकों ने अपने शोध से यह सिद्ध कर दिया है कि मांसाहार से दिल के दौरे, मधुमेह, कैंसर, उच्च रक्तचाप, पक्षाघात, टीबी, (क्षयरोग) गठिया, सिरोसिस, कब्ज, मोटापा, पागलपन, रोगप्रतिरोधक क्षमता में कमी और अन्य अनेक रोग हो जाते हैं। वैज्ञानिकों ने अब तक मांसाहार से सौ से अधिक बीमारियों के होने का पता लगाया है।

मांसाहार से मिलने वाली वसा, शरीर में अस्थिशोथ पैदा करती है जिससे गठिया रोग हो जाता है। मांस बिक्रेता मांस की निर्जलीकरण की क्रिया को धीमा करने के लिए ब्लीचिंग पाउडर का प्रयोग करते हैं ताकि मांस का वजन बरकरार रहे। इसी तरह मछलियों को ताजा और चमकदार बनाए रखने के लिए आमोनियम सल्फेट का प्रयोग किया जाता है। इन रसायनों को

भी मांसाहारी मांस खाते समय खा जाता है जिससे कई तरह के कैंसर पैदा होने की सम्भावना बढ़ जाती है। इसके अलावा मांसाहार से आंशिक लकवा, मूर्च्छा, अनिद्रा, आस्टियोपोरोसिस, रक्तचाप, मूत्राघात, हिस्टीरिया, मिरगी (अपस्मार) मूत्राम्लता, कोरानरी थ्रोम्बोसिस, एंजाइना पेक्टोरिस, अल्बूमिन्योरिया, यकृत के विकार, मनोविकार, क्रोध का बढ़ते जाना, हिंसक मनोवृति, झगड़ालू स्वभाव का होना, टाक्सीमिया (प्रसूतज्वर) कोलेस्ट्राल का बढ़ना, आर्टीरियो, अधिक कामुकता, मुँह और पसीने में दुर्गंध आना, नेफ्राटिस, ऑक्जिमा (उकवत) अर्टीकेरिया, आँख की रोशनी में कमी, हड्डियों की कमजोरी, बवासीर व एनीमिया आदि भी हो सकते हैं। आधुनिकता और तथाकथित माडर्न बनने के दिखावे में अधिकांश लोग उन पश्चिमी चीजों का सेवन करने लगे हैं जिन्हें किसी भी दृष्टिकोण से स्वास्थ्यप्रद और हितकारी नहीं कहा जाता सकता है। पिज्जा, बर्गर और अन्य अनेक पश्चिमी चीजें पश्चिम में स्वास्थ्य के लिए अच्छी नहीं मानी जा रही हैं, उन्हें भारत में 'माडर्न फूड' में शामिल कर लिया गया है।

नये दौर में कोरोना महामारी और दूसरी तमाम बीमारियों के फैलाव ने हमें आहार–विहार के मामले में अधिक सचेत रहने के लिए प्रेरित किया है। आहार के मामले में कई पुरानी मान्यताएं और धारणाएं टूट रही हैं। दुनिया के वैज्ञानिकों को नये सिरे से आहार–विहार पर सोचने और रिसर्च के लिए प्रेरित किया है। दिलचस्प बात यह है कि पश्चिमी देशों में आहार के मामले में कई तरह के बदलाव आए हैं, खासकर कोविड19 के फैलाव के बाद। अब 'कुछ भी खाना–कहीं भी खाना' का नारे की जगह 'शरीर की मजबूती के लिए खाना और घर का खाना' पर जोर दिया जाने लगा है। देखना यह है दुनिया आहार के मामले में अपनी आदतों में कितना बदलाव करने को तैयार है?

आर्ष क्रान्ति पत्रिका के लिए आर्य लेखक बन्धु अपनी सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ भेंजे।

धिक्कार है

खोह में, कंदराओं में
ऊँचे पहाड़ों पर
मंदिर पण्डालों में
पूजते हो काली, दुर्गा
लाखों की भीड़
नवाती है शीश
स्त्री को देवी मानकर
जब स्त्री का चीर
हरता है कोई दुश्शासन
कहाँ गुम हो जाती है
पण्डालों की भीड़
क्यों नहीं आता
बचाने कोई कृष्ण
क्यों हो जाते है
सब के सब कायर
कहाँ गुम हो जाती है
माँ का जयकारा लगाती
चौराहों की सारी भीड़
जब कोई बलात्कारी
थाने में बैठ कर
करता है ठिठोली
कहा गुम हो जाती है
मंदिर के कतारों की भीड़
क्या मंदिर, पंडालों तक
पूजी जायेगी स्त्री रूपी देवी
धिक्कार है ऐसी पूजाओं को
धिक्कार है ऐसी खोखली
धर्म की मान्यताओं को।

— ✍ हरिन्द्र प्रसाद
अधिवक्ता, उच्च न्यायालय
झूंसी, इलाहाबाद
मो. ९४१५९२५९१६

आर्य समाज के अप्रतिम विद्वान,

सैकड़ों ग्रन्थों के प्रणेता

पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय

की पुण्यतिथि पर उनके व्यक्तित्व व कृतित्व को

शतशः नमन

आचार्य वेदप्रिय शास्त्री

29 अगस्त 1968

8107827572, 7665765113

आर्य परिवार संस्था, कोटा